ॐ

स्वाध्याय-मंडल।

आचार्य की आज्ञा।

"वेदका पढना पढाना, सुनना सुनाना सब आर्योंका परम धर्म है।"

सनातन वैदिक धर्मकी जागृति होनेसेहि इह लोकमें अभ्युदय और परलोक का निश्रेयस प्राप्त हो सकता है। इसलिये प्रतिदिन वेदका स्वाध्याय कीजिए:—

स्वाध्याय के ग्रंथ।

विक्रीके लिये तैयार।

(१) यजु० अ० ३६ की व्याख्या। (द्वितीयवार मुद्रित)

'सच्ची शांतिका सच्चा उपाय।' मू० ॥) वी. पी. से ॥=)

इस पुस्तक में 'सच्ची शांति' सब मनुष्योंमे स्थापित करनेके सच्चे उपायोंका उत्तम वर्णन है। इस पुस्तक के पढनेसे ज्ञात हो सकता है कि, मनुष्यसमाजकी अशांति किस प्रकार दूर हो सकती है।

यजुर्वेदका स्वाध्याय ।

अध्याय ३०

'पुरुष-मेध-प्रकरण ।'

अथवा

"मनुष्योंकी सच्ची उन्नति का सच्चा साधन ।"

(पूर्वार्ध)

लेखक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

प्रकाशक

स्वाध्याय-मंडल, औंध (जि. सातारा, पूना मार्ग)

प्रथमवार २०००,

संवत् १९७६, शालीवाहन शक १८४१

प्रकाशक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
(स्वाध्याय मंडलके लिये)
औंध, जि० सातारा.

यजुर्वेद अध्याय ३० के 'नरमेध प्रकरण'का थोडासा परिचय।

(१) अध्यायका नाम। 'पुरुष-मेध।'

यजुर्वेदके अध्याय ३० का नाम **'पुरुष-मेध'** है। 'पुरुष-मेध, नर-मेध, नृ-मेध, मनुष्य-यज्ञ, नृ-यज्ञ' आदि नरमेधवाचक सब शब्द एकाहि भाव रखते हैं। **'मेध'** शब्दके अर्थका विस्तारपूर्वक विचार यजु० अ० ३२ **सर्व-मेध'** अर्थात् **'सर्व पूज्यकी पूजा'** नामक पुस्तकमें किया है, वहाहि पाठक इसको देख सकते हैं। **'मेध'** शब्दके यौगिक अर्थ.—(१) मिलना, (२) परस्पर मित्रता करना, (३) ऐक्य करना, (४) एक दूसरेको जानना, (५) जोडना, (६) प्रेम करना, (७) धारणाबुद्धिका बल और तेज बढाना (८) पवित्रता करना, (९) सत्व, बल और उत्साह बढाना, (१०) यज्ञ अर्थात् 'सत्कार-मैत्री-उपकार' करना इतने हैं। मेध-वाचक इन अर्थोंके साथ **'नर-मेध'** शब्दके अर्थ.–(१) मनुष्योंका मिलान करना, (२) मनुष्योंमें परस्पर मित्रता करना, (३) मनुष्योंका ऐक्य करना, (४) मनुष्योंने, परस्पर एक दूसरेको अच्छी प्रकार जानकर व्यव-हार करना; (५) मनुष्योंमें परस्पर प्रेमका संबंध जोडकर उसको अधिक दृढ बनाना, (६) मनुष्योंमें परस्पर प्रेमका बर्ताव करना, (७) मनु-ष्योंकी धारणाशक्तिकी वृद्धि करना, (८) मनुष्योंको पवित्र बनाना, (९) मनुष्योंमें सत्व, बल, उत्साह आदि गुणोंकी वृद्धि करना, (१०) मनुष्योंमें सत्कार भाव, परस्पर मित्रता और परस्परका औदार्य बढाना, इ० होते हैं। इन्ही अर्थोंको लेकर मनुभगवानने कहा है किः—

नृ-यज्ञोऽतिथि-पूजनम्।

मनु. ३।७० ॥

'अतिथिका सत्कार करनाहि मनुष्य-यज्ञ है।' आजकल 'नर-

प्रकाशक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
(स्वाध्याय मंडलके लिये)
औंध, जि० सातारा.

मुद्रक—रामचंद्र येसु शेडगे, 'निर्णयसागर' छापखाना,
२३ कोलभाट गल्ली, मुंबई.

यजुर्वेद अध्याय ३० के 'नरमेध प्रकरण' का थोडासा परिचय।

(१) अध्यायका नाम। 'पुरुष-मेध।'

यजुर्वेदके अध्याय ३० का नाम **'पुरुष-मेध'** है। 'पुरुष-मेध, नर-मेध, नृ-मेध, मनुष्य-यज्ञ, नृ-यज्ञ' आदि नरमेधवाचक सब शब्द एकहि भाव रखते हैं। **मेध'** शब्दके अर्थका विस्तारपूर्वक विचार यजु० अ० ३२ **"सर्व-मेध'** अर्थात् **'सर्व पूज्यकी पूजा'** नामक पुस्तकमें किया है, वहाहि पाठक इसको देख सकते हैं। **'मेध'** शब्दके यौगिक अर्थ —(१) मिलना, (२) परस्पर मित्रता करना, (३) ऐक्य करना, (४) एक दूसरेको जानना, (५) जोडना, (६) प्रेम करना, (७) धारणाबुद्धिका बल और तेज बढाना (८) पवित्रता करना, (९) सत्व, बल और उत्साह बढाना, (१०) यज्ञ अर्थात् 'सत्कार-मैत्री-उपकार' करना इतने हैं। मेध-वाचक इन अर्थोंके साथ **'नर-मेध'** शब्दके अर्थ -(१) मनुष्योंका मिलान करना, (२) मनुष्योंमें परस्पर मित्रता करना, (३) मनुष्योंका ऐक्य करना, (४) मनुष्योंने, परस्पर एक दूसरेको अच्छी प्रकार जानकर व्यवहार करना; (५) मनुष्योंमें परस्पर प्रेमका संबंध जोडकर उसको अधिक दृढ बनाना, (६) मनुष्योंमें परस्पर प्रेमका वर्ताव करना, (७) मनुष्योंकी धारणाशक्तिकी वृद्धि करना, (८) मनुष्योंको पवित्र बनाना, (९) मनुष्योंमें सत्व, बल, उत्साह आदि गुणोंकी वृद्धि करना, (१०) मनुष्योंमें सत्कार भाव, परस्पर मित्रता और परस्परका औदार्य बढाना, इ० होते हैं। इन्ही अर्थोंको लेकर मनुभगवानने कहा है किः—

नृ-यज्ञोऽतिथि-पूजनम्।

मनु. ३।७०॥

'अतिथिका सत्कार करनाहि मनुष्य-यज्ञ है।' आजकल 'नर-

मेध' का भाव 'नरमांसका हवन करना,' समझते हैं, परंतु इस आशयके लिये वेदमे कोई आधार नहीं । यजु० अ० ३० और ३१ मे 'नरमेध' का विषय आया है । इन दोनो अध्यायोंमे ऐसा एकभी मंत्र नहीं है, कि जिससे नरमांसके हवनका थोडासाभी भाव निकल सके । अ० ३१ के विषयमे जो लिखना होगा वह उस अध्यायके प्रस्तावमे लिखूगा, यहा केवल अ० ३० के विषयमेहि लिखना है ।

(२) मेधमें हिंसाका भाव ।

'मेध' मे हिंसाका भाव है । 'मेधृ–मेधा-हिसनयो संगमे च' । ऐसा अर्थ मुनीश्वर पाणिनी देते है । अर्थात् 'मेध' का अर्थ—(१) मेधा बुद्धि वढाना, (२) हिंसन करना और (३) संगम अर्थात् संगति किवा मित्रता करना । जिनके साथ मित्रता करनी और जिनकी मेधाबुद्धि बढानी, उन्हीकी हिसा करनी, यह बात सुसंगत नही दीखती । उदाहरणके लिये देखीए —ज्ञानी पुरुषोंके साथ मित्रता करनी उचित है और साधारण मनुष्योकी धारणा-शक्तिकी वृद्धि करके उनको उन्नत करना आवश्य है, ये दोनो बातें सर्वसमत हो सकतीं हैं, परंतु इनही मनुष्योंका हनन करना किस प्रकार योग्य हो सकेगा ? यदि ज्ञानियोका हनन हुआ, तो ज्ञानप्रचार ओर बुद्धिवर्धनका कार्यहि नष्ट होगा, इसलिये इस शब्दमे जो हिंसाका भाव है, वह ज्ञानके विरोधियोके विषयमे समझना उचित है । जैसा देखीए:—(१) विद्वानोंके साथ मित्रता करना, (२) मनुष्योंकी धारणाबुद्धिकी वृद्धि करना, और (३) जो इन दो कर्तव्योके साथ विरोध करेंगे उनकी हिसा करना अर्थात् उनका विरोध हटाना अथवा विरोध करनेवालोको दूर करना । इसी प्रकार इस शब्दके हिंसाका अर्थ समझना उचित है । अन्यथा अर्थका अनर्थ होजायगा और वेदके उत्तम आशयका बिघाड होगा । इसलिये उन्नतिके विरोधक दस्यु-भावका हनन अर्थात् नाश करनाही यज्ञकी हिसा है । इसी हेतुसे अहंकार, क्रोध, आलस आदिका मानस-यज्ञ-द्वारा नाश करनेके लिये उपनिषद् ग्रथोंमे कहा है । 'मन्युः पशुः' आदि शब्दोका यही आशय है कि, ज्ञानविरोधक जो क्रोध आदि पाशवी वृत्तियां है, उनहीका नाश करना आध्यात्मिक यज्ञीय हिसाका तात्पर्य है । निम्न कोष्टकसे 'मेध' के **'मेध, संगम और हिंसा'**के भावोंका स्पष्ट पता लग जायगा:—

नर–मेध
Advancement of *Human-civilization*

मेधा–शक्ति Power of intellect	सगति–करण Power of unity	हिसा Destruction

१ मनुष्योका मेलमिलाप, (Association)	१ परस्पर न मिलना, (Dis association)
२ परस्पर मित्रता, (Friendship)	२ परस्पर द्वेषभाव, (Enmity)
३ परस्पर ऐक्य, (Unity)	३ परस्पर भेदभाव, (Dis-union)
४ परस्परका उत्तम ज्ञान, (Knowledge)	४ परस्परका अज्ञान, (Ignorance)
५ परस्परका दृढ सबध, (Firm relation)	५ परस्परकी उदासीनता, (Indifference)
६ परस्परका प्रेम, (Love)	६ परस्पर अप्रीति, (Hatred)
७ बुद्धिका विकास, Development of intellect	७ बुद्धिका सकोच, (Mean-ness)
८ मनुष्योकी पवित्रता, (Purity)	८ मनुष्योकी अपवित्रता (Impurity)
९ बलकी वृद्धि, (Power)	९ बलका नाश, (weak-ness)
१० परस्पर सत्कार और सहाय (Respect and charity)	१० परस्पर निरादर और दोषदृष्टि (Disrespect and uncharitableness)
सरक्षक विचार Protective forces	विनाशक विचार Destructive forces
प्राप्त करना	दूर करना

इस प्रकार '**मेध**' के हिंसाभावका तात्पर्य है । '**बुद्धि, संगति**' और '**हिंसा**' इन तीनों भावोंका विशेषतया नरमेधमे और सामान्यतया सब मेधोंमे यही तात्पर्य है । जो बुद्धि और संगतिका विरोध करेगा, उसको दूर हटाना है । यही भाव लेकर इस अध्यायका निम्न मंत्र देखीएः—

ब्रह्मणे ब्राह्मणं आलभेत।
क्षत्राय राजन्यं आलभेत।

'ज्ञानके लिये ब्राह्मणको प्राप्त करे । शौर्यके लिये क्षत्रियको प्राप्त करे ।' यह वास्तविक अर्थ है । परंतु भ्रमसे इन मंत्रोंका निम्नप्रकारका अर्थ समझा जाता है.—

'ब्रह्म देवताके प्रीत्यर्थ ब्राह्मणका आलंभन अर्थात् बलिदान करे, क्षत्र-देवताके प्रीत्यर्थ क्षत्रियका बलिदान करे, ।' इस अध्यायके श्री. उवटाचार्य और महीधराचार्यके भाष्योमे इसीप्रकार अर्थ किये है । और इनके भाष्यानु-सार पं० ज्वालाप्रसाद मिश्रजीने अपने यजुर्वेदके मिश्रभाष्यमे भी इसी प्रका-रका भाव बताया है । पंडित ज्वालाप्रसादजी कहते है कि, 'ग्यारह यूप... सुशोभित करने चाहिए ।' जिसमे......ब्राह्मण-क्षत्रियादि सब पुरुषोको नियुक्त करना चाहिए । इसी अध्यायके प्रसगमे पं० ज्वालाप्रसादजी ब्राह्मण-क्षत्रियादिकोंको यूपोंके साथ बांधनेके लिये कहते है । कौनसा तेजस्वी ब्रह्म-वर्चस्वी ब्राह्मण तथा मानधन वीर्यशाली उग्र क्षत्रिय अपने आपको यूपके साथ बंधवानेके लिये सिद्ध होगा ? अथवा जो अपने आपको पशुवत् यूपके साथ बंधवानेके लिये सिद्ध होगा, वह ब्राह्मण और वह क्षत्रिय भी किस श्रेणीका होगा ? जिसमें मनुष्यत्व और पशुत्वके भेदका भी परिज्ञान नही है । वास्तव बात इतनीही है कि, जो बात वेदमंत्रोंमे नही है, वही वेदमंत्रोपर लदानेका संकल्प इन लोकोंने किया है । ज्ञानसे अथवा अज्ञानसे इन लोकोने अर्थका अनर्थ कर छोडा है, इसमे कोई संदेह नही ।

साधारण विचारसे भी इसका पता लग सकता है कि 'ज्ञानके लिये ज्ञानीके पास पहुंचना चाहिए' न कि ज्ञानीका वध करना चाहिए, तथा 'वीरताके लिये क्षत्रियको पास करना चाहिए' न कि शूर पुरुषका वध करना चाहिए ।

वध तो उनका करना चाहिए कि, जो ज्ञान और शौर्यके प्रचारमे विघ्न खडा करेगा और लोकोको ज्ञान और शौर्यसे वंचित रखेगा । मेधके 'मेधा-सगम' 'हिसा' इन तीन अर्थोंकी व्यवस्थाको न समझनेके कारण इन लोकोने भ्रमसे विपरीत अर्थ किये हैं, वे सब त्याज्य हैं । 'नृ-यज्ञ' का अर्थ अतिथि-पूजा, जो मनुने कहा है, उसकी ओर भी यदि इनका ख्याल चले जाता, तोभी ये सब विद्वान ठीक मार्गपर आ सकते थे, परंतु दुर्दैव है कि मनुकी सूचनाकी ओर किसीका ध्यान पहुचाहि नही । अब नरमेधका अर्थ विशेष स्पष्ट होनेके लिये यज्ञवाचक वैदिक शब्दोका अर्थ नीचे देता हूं:—

(३) मेधवाचक शब्दोंका अर्थ ।

निघण्टु अ. ३।१७ मे यज्ञवाचक १५ शब्द दिये हैं जिनके अर्थ देखीए:—

(१) **यज्ञः**='यज्-देवपूजा-सगतिकरण-दानेषु ।' पूजा (सत्कार Honour, respect), संगति (unity), दान (charity) ये इसके तीन अर्थ है । सत्कार, ऐक्य और उपकार इन तीन भावनाओंका बोध करानेवाला यज्ञशब्द है । यह शब्द तीन प्रकारके लोकोके साथ मनुष्यका कर्तव्य बता रहा है । (१) जो अपनेसे श्रेष्ठ सज्जन होगे, उनका सन्मान (honour) करना, (जो अपने बराबरीके सच्छील पुरुष होगे, उनके साथ सगति (union) करना, तथा (३) जो हीन अवस्थामे होगे उनके लिये दान (charity) करना, यह यज्ञ है । व्यक्तिके अदर आत्म-संमान (self-respect), प्रेम (friendliness), औदार्य (charitable disposition) ये गुण चाहिए । तथा समाजके अदर इन गुणोसे युक्त मनुष्य चाहिए । इसप्रकारके मनुष्य प्रत्येक समाजमे उत्पन्न करना यज्ञका उद्दिष्ट है ।

(२) **वेनः**—'वेन-गति-ज्ञान-चिन्ता-निशामन-वादित्र-ग्रहणेषु ।' गति करना, जानना, विचार करना, देखना, वाद्यबजाना और स्वीकार करना, इतने इस धातुके अर्थ है । 'वेनतिः कान्तिकर्मा। निघं० २।६॥, वेनतिः गति-कर्मा ।२।१४॥, वेनतिः अर्चतिकर्मा । निघं० ३।१४॥, वेनतिः कामयते । निरु. १२।२९॥, वेनः मेधाविनाम० निघं० ।३।१५॥' इतने इस शब्दके निघंटु निरु-

कर्मे अर्थ है, कांति, गति, पूजा, कामना, बुद्धिमत्ता ये अर्थ इनसे ज्ञात होते हैं। तात्पर्य वेन शब्द निम्न भाव बताता है:—गति (movement), ज्ञान (knowledge), विचार (thinking, consideration) दृष्टि (sight), प्राप्ति (taking, receiving), कांति (beauty, lustre, wish), पूजा-सत्कार (honour, respect, worship) बुद्धि (intelligence), वाद्यवादन (music) 'वेन'के ये भाव हैं। मनुष्योंमें हलचल रखना, ज्ञान और विचारशक्ति बढाना, उनकी दृष्टीका विकास करना, एक दूसरेको प्राप्त होकर परस्पर साहाय्य करना, सौंदर्य बढाना, परस्पर सत्कार करना, बुद्धिकी शक्ति बढाना, वाद्य बजानेका अभ्यास करना ये भाव वेन शब्दसे बोधित होते हैं।

(३) **अ-ध्वरः**—'ध्वरति. वधकर्मा। निघं. २।१९।' ध्वरका अर्थ वध है। 'न ध्वर अध्वर' अहिंसामयं कर्म।' जिसमे हिंसा नही होती, उस कर्मका नाम 'अ-ध्वर' है। 'अ-ध्वर' का अर्थ अहिंसायुक्त कर्म है। जिस कर्ममे हिंसा होनी है उसको अ-ध्वर नहीं कह सकते। यज्ञमें हिंसाका पूर्ण-तया निषेध है, यह भाव 'अ-ध्वर' शब्दहि बता रहा है।

(४) **मेधः**—बुद्धिवर्धन, संगतिकरण और हिंसन ये तीन अर्थ इसके हैं। इसका विशेष स्पष्टीकरण पूर्वस्थलमें तथा यजु० अ० ३२ की भूमिका मे हो चुका है, और वहा हिंसाके भावका तात्पर्य भी बताया गया है। अ ध्वर शब्दके साथहि इसका प्रयोग बताता है कि इसमे हिंसा नही होनी चाहिए। इसलिये दुष्टताका नाश इतनाहि यहाके हिंसनका तात्पर्य है।

(५) **विदथः**—'विद्-ज्ञाने। विद्-सत्तायाम्। विद्-लाभे। विद्-विचारणे। विद्-चेतनाख्याननिवासेषु।' इस धातुसे यह शब्द बनता है। इसलिये इसके अर्थ-ज्ञान, अस्तित्व, लाभ, विचार, चेतना, व्याख्यान, निवास, इतने होते हैं। 'विदथ' के कोशोंमें अर्थ—विद्वान (a learned man), साधु (an ascetic), स्वार्थत्याग (sacrifice), ज्ञान (knowledge), युद्ध (battle) इतने हैं। लोकोमे विद्वत्ता, ज्ञान, साधुत्व, स्वार्थत्याग आदि गुणोकी वृद्धि करना और उनको जीवनके युद्धमे कृतकार्य बनाना इसका तात्पर्य है।

(६) **नार्यः । नारी**—'नृ-नये (to lead)' । मनुष्योंको धर्म, नीति (morality) आदिके सुनियमोंसे चलानेका तात्पर्य इस शब्दसे लिया जाता है ।

(७) **सवनम्**—'सु-प्रसवैश्वर्ययो ।' प्रेरणा करना, उत्पत्ति करना और प्रभुत्व प्राप्त करना, इसका भाव है ।

(८) **होत्रा**—'हु-दानादानयो । अदने च ।' दान, आदान और अदन ये भाव इसके है । दूसरोको सहाय करना, दूसरोको प्राप्त करना, और भोजन करना ये इसके आशय है । निघं० १।११ मे इसीका अर्थ 'भाषा, वाचा' ऐसा दिया है । ऐतरेय ब्राह्मणमे 'वाग्वै यज्ञ ।' (ऐ ब्रा. ५।४) वाणीको यज्ञ कहा है । भाषाका दान अथवा आदान, अर्थात् भाषा सीखना और सिखाना भी इसका भाव होसकता है ।

(९) **इष्टिः**—यज्ञ शब्दके अर्थ और इसके अर्थ एकसेहि है । इच्छा, अथवा इष्ट अवस्था ऐसाभी एक इसका अर्थ है ।

(१०) **देव-ताता**—देवत्वका विस्तार करना इसका तात्पर्य है । सब दिव्य गुणोका देवत्वमे सग्रह होता है । सब लोकोमे उत्तम श्रेष्ठ गुणोका विस्तार करना इसका उद्देश है ।

(११) **मखः**—'मह-पूजाया, मंहि-वृद्धौ, महि-भाषार्थ ।' इस धातुसे यह शब्द बनता है । पूजा-सत्कार (honour, respect, worship), वृद्धि (growth, success), भाषा (speech) ये इसके अर्थ है । 'मंख-गतो' इस धातुसेभी यह शब्द बनता है । जिसके कोशमे निम्न अर्थ दिये है-पूज्य (adorable), सचेतन (lively), तेज, चपल (active), आनंदी (cheerful), बलवान तेजस्वी (vigorous)। लोकोमे इन भावोकी वृद्धि करना इस शब्दसे यहा तात्पर्य है ।

(१२) **विष्णुः**—'विष्लृ-व्याप्तौ ।' व्यापक कर्म यह इसका अर्थ है । जिस कर्मसे एक व्यक्तिका लाभ होता है वह **'संकुचित कर्म'** होता है । परंतु जिस कर्मसे सब जनताका लाभ होता है, उसको **'व्यापककर्म'** कह सकते है, यही इसका आशय है ।

(१३) **इन्दुः**—इन्दु, सोम, चंद्र ये शांतिबोधक शब्द है। 'उन्दी-क्लेदने।' इस धातुसे यह शब्द बनता है । गीला करना, शांत करना इसका आशय है।

(१४) **प्रजा-पतिः**—प्रजा अर्थात् सब जनताका पालन जिससे हो सकता है, उस कर्मका नाम प्रजा-पति है । इस शब्दके साथ 'नरमेध' के अर्थोंकी तुलना करनी चाहिए । प्रजाके सच्चे पालनके साथ 'मेध' शब्दके पूर्वोक्त दस अर्थोंका अत्यंत घनिष्ठ सबंध है । **'प्रजा-पति'**और **'नर-मेध'** ये दो भिन्न शब्द जनताके पालनका भाव उत्तम रीतीसे सिद्ध कर रहे है। 'पत्-ऐश्वर्ये' इस धातुसेभी 'पति' शब्द बनता है । प्रजाका ऐश्वर्य बढानेवाले कर्मका नाम 'प्रजापति' हो सकता है । ये सब अर्थ यज्ञका भाव बताते है।

(१५) **घर्मः**—'गर्मी' अर्थात् उष्णता (heat) यह इसका अर्थ है। जनतामे 'गर्मी', उष्णता (heat) रखना इसका आशय है।

यज्ञवाचक १५ शब्दोका भाव देखनेसे यज्ञके वास्तविक उद्देशका पता लग सकता है । समझीए कि यज्ञके ये १५ लक्षण है । जनतामे किस प्रकारका कर्म होना चाहिए, इसका ज्ञान इन शब्दोके भावोपर विचार करनेसे हो सकता है । यज्ञवाचक सब वैदिक शब्दोंका विस्तारपूर्वक अर्थ यहा इसलिये दिया है कि, पाठक, उनका विचार अच्छी प्रकार करें, और नरयज्ञका आशय भली प्रकार सोचे । नर यज्ञका विषय बडा गहन है, इसलिये उसका अच्छी प्रकार विचार होना चाहिए । आशा है कि, ये यज्ञवाचक १५ शब्द नरयज्ञके १५ उच्च भाव पाठकोंके मनोमे प्रकाशित करेंगे, और वैदिक नरमेधकी सच्ची कल्पना पाठकोकी मनोभूमीपर खडी करेंगे ।

(४) 'नरमेध' का तात्पर्य 'मनुष्यत्वका विकास' है।

पूर्वोक्त अर्थोका विचार करनेसे नरमेध अथवा पुरुषमेधका मुख्य उद्देश **'मनुष्यत्वका विकास'** है, यही बात निश्चित होती है । ज्ञान, बल, तेज, वीर्य, पौरुष आदि गुणोकी वृद्धि प्रत्येक मनुष्यमे करना और प्रत्येक मनुष्यके सब शक्तियोंका विकास करना, नरमेधका व्यक्तिविषयक कर्तव्य है । तथा राष्ट्र और समाजमे उक्त गुणोसे युक्त गुणी पुरुषोंकी संख्या बढाकर ज्ञान,

बल, तेज, वीर्य, पौरुष और उत्साहमय ओजस्विता उत्पन्न करना नरमेधका जनताके विषयक कर्तव्य है। समाजमे सबकी शक्ति बढाकर सब राष्ट्रको एक जीवनसे युक्त करनाही पुरुषमेधसे साध्य है । (१) सत्कार, (२) ऐक्य, (४) परोपकार, (५) सुविचार, (६) अहिसा, (७) ज्ञान-प्रचार, (८) नीतिधर्म, (९) उत्साह, (१०) उपभोग, (११) देवत्वका विस्तार, (१२) उन्नति, (१३) विकास, (१४) शाति और (१५) रक्षण । ये पंध्रह भाव मुख्यतया यज्ञके पंध्रह नामोसे प्रकट हो रहे है । यज्ञ-वाचक प्रत्येक शब्दके जो अनेक अर्थ है, उनको देखनेसे और भी अनेक गूढ आशय प्रकट हो सकते है । परंतु उक्त १५ भावहि यज्ञका आत्मा है । इनमे **'अ–ध्वर'** शब्दसे 'अ-हिंसा' का आशय व्यक्त होनेके कारण यज्ञमें हिंसाका अर्थ आ नही सकता। मनुष्य अथवा पशुका वध करना और उसके मासकी आहुतियां देना, तथा इस प्रकारके समास यज्ञकी कल्पना करना, वेदमंत्रोके उपदेशसे सर्वथा विरुद्ध है। नरमेधका वर्णन यजु० अ० ३०।३१ मे है । इन दोनों अध्यायोमे एकभी ऐसा मंत्र नही, कि जिससे नरमांसके हवनकी शंकाभी किसीके मनमे उत्पन्न हो सके ।

(५) नरमेधके विषयमें युरोपीयन लोकोंकी संमति ।

म० राल्फ टी० एच्. ग्रिफिथ् महोदय कहते हैं—Books XXX and XXXI treat of the Purusha-medha or Human-sacrifice, an old-established custom among almost all nations of antiquity. The ceremony was to be performed by a Brâhman or a Râjanya, and was expected to obtain for the sacrificer universal pre-eminence and every blessing which the Horse-sacrifice might have failed to secure. The ritual resembles in many respects that of Ashva-medha; man, the noblest victim, being actually or symbolically sacrificed instead of the Horse, and men & women of various tribes, figures, complexions, characters, and profes-

sions being attached to the sacrificial stakes in place of the tame and wild animals enumerated in Book XXIV. These nominal victims were afterwards released uninjured, and, so far as the text of the white Yajur Veda goes, the whole ceremony was merely emblematical, a type of the allegorical self-immolation of Purusha, Embodied Spirit or the Cosmic Man.

(यजुर्वेद भाषातर अ ३० पृ. २५५) यजु ३०।३१ अध्याय पुरुपमेध अथवा मनुष्यके बलिदानका वर्णन करते हैं। यह प्रथा प्राय सब प्राचीन देशोमे बहुत पुराणे समयसे चली आई है। यह यज्ञ ब्राह्मण अथवा क्षत्रियकोहि करनेका अधिकार है। इसके करनेसे वह फल प्राप्त होते है, कि जो अश्वमेधसे नही मिल सकते। इस पुरुपमेधकी यज्ञप्रक्रिया अश्वमेधके समानहि है। अश्वके स्थानपर, **मनुष्य, सबसे श्रेष्ठ बलि,** केवल चिह्नमात्रसे अथवा वास्तविक रीतीसे अर्पण किया जाता है, तथा मनुष्यके साथ अनेक जाति, आकार, रग, स्वभाव, धंदे आदिके अनेक स्त्रीपुरुप यूपके साथ बाधे जाते है, जहा अश्वमेधमे जंगली ओर ग्रामीण पशु बाधे जाते है, जैसा कि अ. २४ मे लिखा है। ये नाममात्र बलि यज्ञसमाप्तिके पश्चात्, किसी प्रकारका घातपात न कराके, खुले किये जाते है, और शुक्लयजुर्वेदके आधारसे यह बात स्पष्ट है कि, यह सब क्रिया केवल लक्षणमात्र हैं। विश्व-पुरुष, चैतन्य, अथवा पुरुषके आत्म-बलिदानके रूपक अलंकारका यह एक नमूना है।

म० झेनैद अ० रागोझिन् महोदय की संमतिः—In the Horse-sacrifice as originally instituted, and practised too, "The Man" was indeed led after the horse, as the goat was led before him, and for the same purpose—to be sacrificed. For there can be no doubt whatever that human sacrifices were part of ancient aryan worship.......... The Indo-Aryans outdid all others in plain-speaking consistency. They openly classed

man among animals, counting him as the noblest and first, but still as one of them, *primus inter pares*, as has been felicitously remarked. Sacrifice was of two kinds bloody and bloodless. Five "animals" are declared fit victims for the former: man, the horse, the steer, the sheep and the goat. At a solemn sacrifice all five victims are to be immolated. Vedic rituals of undoubted authenticity—Shrauta-Sûtras and text in Yajur Veda, all Shrutî–'revealed'—give the most detailed instructions as to the occasions of such sacrifices and the manner of them. One of these occasions was the building of city walls, when the bodies of five victims were to be laid in the water used to mix the clay for the bricks, to which their blood was supposed to give the necessary firmness—and probably—consecration. Another was the Horse-sacrifice, *ashva-medha*. Then there was the out-and-out human sacrifice—*purusha-medha*—which ranks still higher, and for which the victim must be a Brâhman or a Kshatriya, to be bought for a thousand cows and a hundred horses. An intensified form of *purusha-medha* is that in which a large number of victims—166 or even 184—men of all sorts and conditions—are immolated. The Shatapatha-Brâhmana itself, the most important of all, describes this wholesale slaughter-ceremony. But the ritual suddenly breaks off and drops into narrative, giving us the following legend: "Then, when the fire had already been carried around the victims (all bound

to the several sacrificial posts) and they were just about to be killed, a voice was heard to speak: 'O man, do not accomplish it! If thou didst accomplish it, one man would eat the other.'" To understand this, we must remember that the flesh of victims was partaken of by the sacrificers. It is therefore probably—and nothing could be more natural—the horror of Cannibalism which caused the frightful practice to be abandoned, at the cost of logical inconsistancy. Substitutes were used at one time, such as golden human heads. Yet the custom of associating a human victim with the horse and goat in the *ashva-medha*, seems to have persisted for a while. Only it is prescribed to buy for the purpose an old, decrepit, infirm leper, for whom, "going to the gods" could be only a most happy release But even this wretched wreck must belong to one of the holiest and most illustrious Rishi families. However, the dislike of spilling blood and taking life (unless in war) which became so conspicuous and beautiful a feature of later Brahmanism, was already growing on the Indo-Aryas, and the same Brâhmana—the Shatapatha—formally declares bloodless offerings to be more acceptable and fully as efficient, as usual in the form of a legend or parable:............"

20............But that very disapproval is manifestly a protest against something that really existed, and we cannot exonerate our Aryan ancestors from the blot which appears to rest on all races—that of

having, at some time, practised the abomination of human sacrifices." (Stories of the Nations. 'Vedic India,' page 407–413)

"अश्वमेधमे प्रथमतः घोडेके पीछेसे मनुष्य और पहिले बकरा बलिदानके लिये ले जाते थे। प्राचीन आर्योंकी पूजाविधिमे नरबलिका एक भाग था इसमे कोई सदेह नही.... ....हिदुस्थानके आर्य खुलंखुला स्पष्ट बात कह देनेमे, सब अन्य आर्योंकी अपेक्षा, आगे कदम बढाये हुए थे । उन्होनें स्पष्टतासे मनुष्यको पहिला श्रेष्ठ पशु कहा था । यज्ञ दो प्रकारका था, एक रक्तयुक्त और दूसरा रक्तरहित । रक्तयुक्त खूनी यज्ञके लिये मनुष्य, घोडा, हरण, बकरा और मेढा ये पाच पशु योग्य माने गये है । असली यज्ञमे पांचहि पशुओका बलिदान इष्ट है । प्रकट हुआ हुआ श्रुतिशास्त्र, यजुर्वेद, श्रौतसूत्र, और शतपथ ब्राह्मण आदि सब पुस्तके इस विषयमे सब विधि बता रहे है । शहरके कीलेकी दिवारोके लिये जो ईटे बनाई जाती थी, उनके लिये गारा बनानेके कारण पानीमे उक्त पाच पशूओके शरीर रखे जाते थे, जिनके रक्तसे ईटोकी दृढता अधिक होती है ऐसा उनका ख्याल था । मनुष्य यज्ञका यह एक अवसर था । दूसरा नरमेधका अवसर अश्वमेधके समय होता था । इससे तीसरा अवसर खुलंखुले मनुष्यबलिदानका पुरुषमेधमे होता था । यह यज्ञ सबसे श्रेष्ठ था और क्षत्रिय और ब्राह्मणहि, हजार गौवे और सौ घोडोके बदले खरीद कर इसमे बलिदान किये जाते थे। इसमे १६६ से १८४ तक विविध जातियोके मनुष्योका बलिदान होता था । इस प्रकारके पूरेपूरे कसाईपनकी विधि शतपथ ब्राह्मणमे दी है। परतु वहा उक्त विधि एकदम बंद होती है और एक आवाज सुनाई देता है —"**जब वह अग्नि उक्त पशुओंके चारों ओर घुमाया जाता है और जब उनके वधकी सब तैयारी होती है तब एक आवाज सुनाई देता है—'हे मनुष्य ? पूर्ण न कर, यदि तू यह कर्म पूर्ण करेगा, तो एक मनुष्य दूसरे मनुष्यको खायेगा।'** " यह बात समझमे आनेके लिये एक प्रथा ध्यानमे धरनी चाहिए, वह यह है कि अर्पित बलिओका मास ऋत्विजोमे बाटा जाता था। इस भयानक प्रथाका उच्छेद करनेकी अत्यंत आवश्यकता उत्पन्न होनी अत्यंत स्वाभाविक बात थी । किसीकिसी समय सुवर्णके सिर प्रतिनिधिके

रूपमे रखे जाते थे। परंतु निःसंदेह अश्वमेधके साथ मनुष्यका बलि देनेका विधि बहुत देरतक आचरणमे था। इस बलिदानके लिये ऋषिकुलमे उत्पन्न हुआ हुआ वृद्ध, अशक्त, मरियल कुष्टरोगी-जिसको कि 'देवोके पास जाना' इस दुःखसे छुटकारा होनेके कारण सुखकारक था—खरीदा जाता था। परंतु इस प्रकारके रक्तपातके विधिकी निरादरता हिंदी आर्योंके मनमे आरूढ हुई और उसी शतपथ ब्राह्मणमे रक्तरहित अर्पणका प्रभाव निम्न कथाभागसे वर्णन किया है — ....''

२०.........परंतु किसी बातके निषेधसेहि उस बातकी एक कालमे स्थिति सिद्ध होती है। इसलिये हम आर्य पूर्वजोसे उस धब्बेको मिटा नही सकते, और जो धब्बा सब जातियोंपर लगाही हुआ है, कि किसीनकिसी समय, मनुष्यका बलिदान करनेकी भयानक प्रथा उनमे अवश्य थी।''

महाशय ए बी. कीथ महोदय की संमतिः—'There can be no doubt that the ritual is a merely priestly invention to fill up the apparent gap in the sacrificial system, which provided no place for man. On the other hand, the Yajur Veda text recognizes only a symbolic slaying of a whole host of human victims, who are set free in due course and only animal victims are offered...........'

'Now the human blood was shed in the ritual is not to be denied...... .....'

'It would be impossible to deny that we have here the record of the very widespread usage of slaying a human being to act as the guardian of the foundation of a building, a custom which is world-wide and has often been exemplified in India. But that is not a human sacrifice in the ordinary sense of the word—(it is significant that it is the form found

in cannan)—and clearly affords no parrallal for the rites of the Yajurveda. (Preface, Taittiriya Sanhitâ Page 131–140)

'इसमे कोई सदेह नहीं कि यह सब विधि याज्ञिकोंकी कल्पित बनाई है, इसलिये कि, यज्ञ परिपाटीने मनुष्यके लिये कोई स्थान नहीं था; इस न्यूनताकी पूर्ति इस कल्पित विधिने की है। यजुर्वेदके मूलमंत्र केवल आलंकारिक मनुष्यवध बता रहे हैं, जो सब मनुष्य थोडे उचित विधिके पश्चात खुले किये जाते हैं और मनुष्येतर पशुओंकाहि बलिदान किया जाता है।...... ......अब मनुष्यका रक्त यज्ञविधिमें छिडका जाता था इस बातका इनकार नहीं किया जा सकता।.........इस बातका इनकार करना अशक्य है, क्योकि मकानोंकी तयमे मकानका सरक्षण करनेके लिये मनुष्यका वध किया जाता था। यह परिपाटी दुनियाभर चल रही थी, जिसकी नकल हिंदुस्थानमे भी वारंवार हो रही थी परंतु नरमेधका वास्तविक अर्थ देखनेसे पता लगेगा कि यह नरमेध नहीं। यजुर्वेदमे इस प्रथाके समान कोई विधि नहीं है।"

इसी प्रकार सब युरोपीयनोंकी समति है। इनके मतका सारांश निम्न प्रकार हो सकता है:—

(१) प्राचीन कालके सब लोकोमे मनुष्यके बलिदानकी प्रथा थी।

(२) घोडा, बैल, बकरा, मेढा आदि पशुओंके बलिदानकीभी प्रथा थी।

(३) यजु अ० ३०।३१ इन दो अध्यायोमे पुरुषमेधका वर्णन है। यद्यपि इन अध्यायोंमे साक्षात् मनुष्यवधके लिये कोई आधार नही, तथापि वेदके पूर्वकालीन मनुष्यके बलिदानकी प्रथाका सूचक यह यज्ञ प्रतीत होता है।

(४) यजु. अ० ३०।३१ इन दो अध्यायोंमे अनेक जातियोके मनुष्योका उल्लेख सूचित करता है, कि वेदके पूर्वकालमें सररास मनुष्यका बलिदान आर्योमें प्रचलित था।

(५) रूपक अलंकारसे ये दोनों अध्याय परमात्माका वर्णन करते है ऐसा भी माना जा सकता है।

(६) आर्योंकी पूजाविधिमें अन्य पशुओंके बलिदानके साथ मनुष्यके बलिदानका भी एक भाग अत्यंत प्राचीन कालमे था।

(७) यद्यपि मंत्रोंमे मनुष्यवधके लिये कोई आधार नहीं, तथा ब्राह्मणोंमे भी निर्मास यज्ञकी पुकार दिखाई देती है, तथापि एक कालमे मनुष्यका बलिदान तथा अन्य पशुओंका बलिदान करनेका प्रचार आर्योमें था; यह बात सिद्धहि है। क्योंकि निषेधसेहि इसका अनुमान हो सकता है।

(८) यज्ञमे इतर पशुओंका हवन है, मनुष्योंका नहीं । इसलिये याज्ञिक लोकोंनें वधरहित नाममात्र मनुष्ययज्ञकी प्रथा शुरू की होगी।

(९) कदाचित मनुष्यके बलिदानकी प्रथा अनार्योमे होगी । उसमे वधका निषेध करनेके लिये आर्योने यह वधरहित नाममात्र आलंकारिक मनुष्ययज्ञ खडा किया होगा।

(१०) शतपथ आदि ब्राह्मणग्रंथोंमे नरयज्ञकी विधि दी है, और आगे जाकर यज्ञविधिकी पूर्णता न लिखते हुएहि मनुष्यके बलिदानका जोरसे निषेध किया है।

सारांशरूपसे ये दस सूत्र है, कि जो यूरोपीयन लोकोंकी संमति प्रकाशित कर सकते है। युरोपीयन पंडितोंकी संमति किसी एक बातमे अत्यंत निश्चित हुई है, ऐसा नही दिखाई देता। वैदिक वाङ्मय पढनेसे उनके मनमें जो शंकाएं आती है, उनको वे लिख मारते है । उनकी अबतक निश्चित कोई संमति नही। ऊपर लिखी हुई उनकी समतियां रेतके कीलेके समान अस्थिर हैं।

(१) हमे वेदके पहिले क्या प्रथा थी इसका विचार कर्तव्य नही, (२) अवैदिक अनार्य दस्यु लोकोंमे क्या आचार थे इसका भी विचार करनेकी हमे आवश्यकता नही, (३) सब दुनियाभरके प्राचीन कालके अज्ञानी पूर्वज क्या करते थे, इसका विचार हमे इस समय करना नही है, (४) वेदके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थोमे क्या लिखा है, इसका भी हमे विचार करना नही है, परन्तु (५):—

हमको इस बातका अवश्य विचार करना है कि 'वेद' स्वयं क्या कह रहा है?

यूरोपियन पंडितोकी संमतियोके महासागरका मंथन करनेके पश्चात् हमारे पास कोई ऐसा एक भी वेदमंत्र नहीं आया, कि जिसमे मनुष्यके बलिदा-

नका स्पष्टतासे उल्लेख किया हो । अथवा नर-मांस-हवनका स्पष्टतापूर्वक संबंध बताया हो । सब यूरोपियन पडित इस बातमे सहमत हैं कि, "यजु० अ० ३० और ३१ मे मनुष्यके बलिदानका उल्लेखतक नही है, तथा नर-मांसका हवन करनेका उल्लेख करनेवाला एक भी मंत्र तमाम वेदोमे नही है।" बस ! हमे तो यही बताना है कि, वेदके मंत्रोमे नर-मांस-हवनका उल्लेख नही है । बाकी दुनियाकी जो अवस्था होगी सो होगी, हमे उसका विचार करनेके लिये इस समय फुरसत नही है, और न आवश्यकता है ।

जब सब यूरोपियन पंडित एक मतसे मानते हैं, कि मनुष्यके बलिदानका उल्लेख मंत्रमय वेदमे नही है, तब वे कैसे कह सकते हैं, कि आर्योंमें मनुष्यके बलिदानकी प्रथा अवश्य थी ? **वेदके मंत्रोंने जितना धर्म कहा है, उतना ही आर्योंका वैदिक धर्म है।** और जिस कारण वेदमंत्र मनुष्यबलिका उपदेश नही करते हैं, उस कारणसे यह बात सिद्ध है कि **'शुद्ध वैदिक धर्ममें मनुष्यके बलिदानका विधि नहीं है।'** जबतक कोई पंडित वेदके मंत्रोंको पेश करके यह बात नही सिद्ध करता, कि मनुष्यका बलिदान वेदके मंत्रोमे है, तबतक अन्य ग्रंथोके प्रमाणसे सिद्ध होनेवाला नर-बलि अन्य ग्रन्थोका मत होगा, वह मत वेदपर नही लगाया जा सकता । **मैं यहां पाठकोंसे स्पष्टतापूर्वक बलके साथ कहता हूं, कि नर-मांस-हवनकी प्रथा न केवल यजु० अ० ३० और ३१ में नहीं है, परंतु वेदके चारों संहिताओंमें ऐसा एक भी मंत्र नहीं है, कि जिससे नर-मांस-हवनका ध्वनि तक निकल सकता हो।**

(६) यूरोपियन पंडितोंकी एक भूल ।

वेद, ब्राह्मण, सूत्र आदि ग्रंथोंमे जो कहा है, वह सब वैदिक धर्म है, ऐसा माननेसे युरोपियन लोकोकी उक्त भूल हो गई है । वास्तविक बात यह है कि, वेदके मंत्रोंद्वारा कहा हुआ ही **'सच्चा वैदिक धर्म'** है । शतपथ आदि ब्राह्मणों और सूत्रग्रन्थोद्वारा कहा हुआ **'ब्राह्मण धर्म'** तथा **'सौत्र धर्म'** कहा जाता है । स्मृतिग्रन्थोद्वारा प्रतिपादित **'स्मार्त धर्म'** पुराणोद्वारा प्रतिपादित **'पौराणिक धर्म'** नामसे प्रसिद्ध है । ये सब धर्म

भिन्न भिन्न हैं और इनमें परस्पर विरोध भी है। जो अपना 'वैदिक धर्म' मानते और समझते हैं, उनको भी यह ख्याल अवश्य रखना चाहिए कि, उनका धर्म वेदका कहा हुआ धर्म है, न कि ब्राह्मण, सूत्र, स्मृति, पुराण, आधुनिक आचार्य अथवा साधुमंडलका कहा हुआ।

सनातन वैदिक धर्म	धर्म	काल
	(१) ब्राह्मण धर्म	५००० वर्ष
	(२) सौत्र धर्म	४००० ,,
	(३) स्मार्त धर्म	३००० ,,
	(४) पौराणिक धर्म	२००० ,,
	(५) शैव वैष्णवादि आचार्योंका स्वमत प्रतिपादित धर्म	१२०० ,,
	(६) साधुसंतोंका मतधर्म	८०० ,,
	(७) आपापंथी स्वैरधर्म	आधुनिक

इस कोष्टकमें वर्ष संख्या स्थूल रूपसे दी है, निश्चित नहीं; परंतु थोडे भेदके साथ उक्त ग्रन्थोंका यही काल माना जा सकता है। ब्राह्मणग्रन्थ उत्पन्न होनेके ही पहिले वेदके मंत्र विद्यमान थे। वेदमंत्रोंका काल निश्चित करनेके लिये यूरोपके पंडित अनेक प्रयत्न कर रहे हैं, अबतक उनका एक मत नहीं हुआ। दो हजार वर्षोंसे चालीस हजार वर्षोंतक गिनतियां हो चुकीं हैं। म० बाल गङ्गाधर तिलक महोदयने यह उत्तमताके साथ सिद्ध किया है कि, **हिमयुगके पूर्व कालीन वेद हैं।** हिमयुगको होकर आज ८।१० हजार वर्ष हो गये हैं, इस कालके पूर्व वेदोंका समय था। कई लोक अत्याचारसे ऐसा भी कह रहे हैं कि महाभारत युद्ध होनेके पश्चात् यजुर्वेद बना। अर्थात् महाभारत युद्ध प्राचीन और यजुर्वेद अर्वाचीन है!! इस मतका प्रतिपादन म० चिंतामण विनायक वैद्य महोदयने अपने महाभारत उपसंहारमें पृ० ९७ पर किया है। म० वैद्य कहते हैं कि, 'भारतीय युद्ध यजुर्वेद बननेसे पूर्व हो चुका था।' अपने मतके समर्थनार्थ म० पार्गीटर साहबकी भी संमति दी है। (देखिए मराठी महाभारत उपसंहार) इस

मतकी समालोचना मै किसी अन्य समय करूंगा। यहां केवल उल्लेखमात्र किया है। वेदके काल निर्णयके विषयमे अबतक इन लोकोंकी संमति स्थिर नहीं हुई यह बात इस मतभेदसे सिद्ध हो रही है।

ब्राह्मणग्रन्थोके कालके पहिले वेद ग्रन्थोका काल है, ऐसा सब मानते हैं और इसमे किसीका मतभेद नही है। यद्यपि वैदिक धर्मके अभिमानी वेदको सनातन मानते हैं तथापि मै उस बातको इस समय अलग रखता हूं; और जो यूरोपियनोंका सर्वमान्य सिद्धांत है उसको ही लेता हूं। ब्राह्मण ग्रन्थोके बहुत पूर्व वेदका समय था, यह यूरोपियनोंका मत हम भी मान सकते हैं। ब्राह्मणग्रन्थोका काल सरलतासे निश्चित किया जा सकता है देखिए:—

(७) ब्राह्मणग्रंथोंका कालनिर्णय।

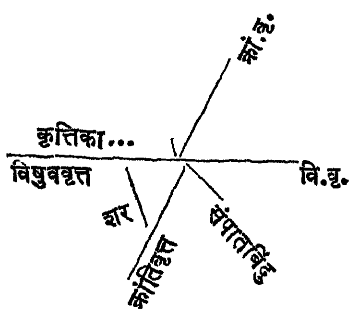
कृत्तिकास्वग्नीऽआदधीत। ... ॥ १ ॥ एता ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते। सर्वाणि ह वा अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्च्यवन्ते ॥ २ ॥

शतपथ ब्रा० २। १। २। १॥

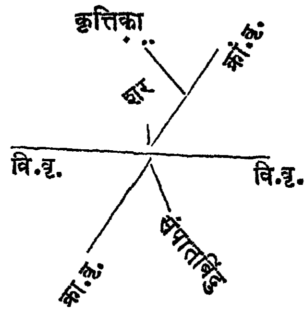
अर्थ—कृत्तिका नक्षत्रमें अग्न्याधान करना चाहिए। क्योकि कृत्तिका ही पूर्व दिशासे नही हटते हैं। दूसरे सब नक्षत्र पूर्व दिशासे हट जाते हैं।

इस शतपथ ब्राह्मणके वचनमे '(कृत्तिकाः) **एताः प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते।**' कृत्तिका नक्षत्र पूर्व दिशासे हटता नही है, ऐसा वर्तमान काल (present tense) वाचक प्रयोग किया है। अर्थात् जिस समय वाजसनेय याज्ञवल्क्यने यह वाक्य लिखा था, उस समय कृत्तिका नक्षत्र बराबर पूर्व दिशामें रहता था। '**न च्यवन्ते**' यह वर्तमान कालकी किया होनेसे शतपथब्राह्मणके लेखनके समयकी यह अवस्था स्पष्ट प्रतीत होती है। इस वाक्यसे यह निश्चय होता है कि, जिस समय कृत्तिका नक्षत्रकी ठीक पूर्व दिशामे अवस्थिति थी, उस समय शतपथ ब्राह्मण लिखा गया; और उसीसमय उसका लेखक वाजसनेय याज्ञवल्क्य इस भारतभूमीपर विराजमान

था। गणितसे इस कालका ठीक निश्चय हो सकता है। आज कल कृत्तिका नक्षत्र विषुववृत्तके ऊपर उत्तर दिशाकी ओर दिखाई देता है। शतपथब्रा० के लेखनके समय कृत्तिका नक्षत्र ठीक विषुववृत्त पर दिखाई देता था, जिससे ठीक पूर्व दिशामे उनकी अवस्थिति उस समय देखनेवालोको प्रतीत होती थी। कृत्तिका नक्षत्रका इस प्रकार स्थानांतर होनेके लिये संपात बिन्दूका चलन होनेकी आवश्यकता है यह बात अत्यन्त स्पष्ट है। इसके लिये संपातबिन्दूका चलन ६८ अंश गणितसे निश्चित हुआ है। एक अंश चलन होनेके लिये ७२ वर्षोकी अवधि लगती है। जिससे ६८×७२=४८९६ वर्षोका समय आता है, कि जिस समय कृत्तिका नक्षत्र ठीक पूर्व दिशामे दिखाई देता होगा। कृत्तिका नक्षत्र ठीक पूर्व दिशामें ७२ (अथवा साधारणतया सौ) वर्ष दीख सकता है। इतने वर्षोके अंदर अंदर शतपथब्राह्मण लिखा गया होगा।



शतपथ ब्राह्मणके समयकी
'कृत्तिका'की स्थिति



आजकलकी 'कृत्तिका'की
स्थिति.

ईस शतपथ ब्राह्मणको लिखे हुए आज ४८९६ वर्ष हुए होंगे। इससे पूर्वकालमे ऐतरेय महीदासने ऐतरेयब्राह्मण लिखा था। यह ब्राह्मण सबसे

---

१ यह गणित म० शकर बालकृष्ण दीक्षितका प्रकाशित किया हुआ है जिसका किसी युरोपियन पंडितने अबतक उत्तर नहीं दिया है।

प्राचीन है । दुर्जनतोष न्यायसे ऐतरेय ब्राह्मणका काल कमसे कम पांच सहस्र वर्ष पूर्व माना जा सकता है। यही ब्राह्मणग्रन्थोका निश्चित काल हो सकता है। किसी यूरोपियन पंडितको, जबतक वह इस गणितको अशुद्ध न सिद्ध कर सके तबतक, ऐतरेय और शतपथको इससे आधुनिक मानने और लिखनेका कोई अधिकार ही नहीं । हां अन्य ब्राह्मण ग्रन्थ इनकी अपेक्षा आधुनिक हैं इसमे कोई संदेह नहीं ।

(८) ब्राह्मणग्रंथ और वेद ।

इन ब्राह्मणग्रन्थोके समय वेदका अर्थ समझनेमे बडी अनिश्चितता उत्पन्न हुई थी । प्रथमतः यह बात लोकोको बडी कठोरसी प्रतीत होगी जो श्रद्धालु पुरुष होंगे उनको इस बातसे क्रोध भी आवेगा परंतु अब सत्य-को छिपाकर रखनेसे कार्यभाग नहीं होगा । जो वास्तव बात है उसका प्रकाश अवश्य होना ही चाहिए ।

(९) ब्राह्मणग्रंथमें अर्थका भेद । ३३ देवता ।

वेदकी ३३ देवताओंकी और ब्राह्मणग्रंथोंकी ३३ देवताओंकी कल्पना थोडी-सी भिन्न है । देखीएः—

> त्रयस्त्रिंशद्देवतास्त्रीणि च वीर्याणि प्रियायमाणा
> जुगुपुरप्स्वन्तः ॥ अस्मिंश्चन्द्रे अधि यद्धिरण्यं
> तेनायं कृणवद्वीर्याणि ॥ १० ॥ ये देवा दिव्येका-
> दश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥ ११ ॥
> ये देवा अंतरिक्ष एकादश स्थ ते देवासो हवि-
> रिदं जुषध्वम् ॥ १२ ॥ ये देवा पृथिव्यामेकाद-
> शस्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥ १३ ॥

अथर्व० १९।२७॥

'३३ देवतायें और तीन प्रकारके वीर्य हैं । प्रेममय आचरण करनेवाले उन वीर्योंको अंदर सुरक्षित रखते हैं । इस आनंदके अंदर जो तेज होता है, उस तेजसे यह मनुष्य वीर्ययुक्त प्रयत्न करता है ॥ जो आकाशमें ग्यारह देव हैं,

जो अंतरिक्षमें ग्यारह देव हैं और जो पृथ्वीपर ग्यारह देव हैं, वे सब ३३देव इस हवनका सेवन करें ॥' तथा—

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ॥
अप्सु क्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥

ऋ० १।१३९।११॥, यजु० वा. सं. ७।१९॥, ऐत. आ. ५।१२।५॥, शत. ब्रा. ४।२।२।९॥, आश्व. श्रौ० ८।१।१२॥

'जो ग्यारह देव आकाश में हैं, जो ग्यारह देव पृथिवीपर हैं, तथा जो ग्यारह देव अंतरिक्षमे अपने महत्वके साथ रहे हैं वे सब ३३ देव इस यज्ञका सेवन करें।' इस प्रकार वेदमें ३३ देवोंका वर्णन आया है। पृथ्वीपर ग्यारह, अंतरिक्षमे ग्यारह और द्युलोकमे ग्यारह ऐसा ३३ देवताओका विभाग वेद करता है, और देखीए:—

आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना ॥

ऋ० १।३४।११ यजु. ३४।४७

त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिंशाः सुराधसः ॥

यजु. २०।११॥ शत. ब्रा. १२।८।३।२८॥,२९॥

त्रिभिर्देवैस्त्रिंशता वज्रबाहुर्जघान वृत्रं विदुरो ववार ॥

यजु. २०।३६॥

'तीन वार ग्यारह अर्थात् ३३ देवता' का उल्लेख इस प्रकार स्पष्ट है। पृथ्वीपर ग्यारह, अंतरिक्षमे ग्यारह और द्युलोकमे ग्यारह इसप्रकार ३३ देवता हैं। इन में भी ३ और ३० यह विभाग है अर्थात् पृथ्वीपर एक मुख्य और दस गौण, अंतरिक्षमें एक मुख्य और दस गौण तथा द्युलोक में एक मुख्य और दस गौण देवताएं हैं। इसका स्पष्टीकरण शतपथ ब्राह्मणमे निम्न प्रकार आता है:—

३३ देवताओंके विषयमें शतपथका मत।

कतमे ते त्रयस्त्रिंशदित्यष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्यास्त एकत्रिंशदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रय-

स्त्रिंशाविति ॥ ३ ॥ कतमे वसव इति । अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसव एतेषु हीदं सर्वं वसु हितमेते हीदं सर्वं वासयन्ते तद्यदिदं सर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति ॥४॥ कतमे रुद्रा इति । दश इमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदाऽस्मान्मर्त्याच्छरीरादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति ॥ ५ ॥ कतम आदित्या इति । द्वादश मासाः संवत्सरस्यैत आदित्या एते हीदं सर्वमाददाना यन्ति तस्मादादित्या इति ॥ ६ ॥ कतम इन्द्रः कतमः प्रजापतिरिति । स्तनयित्नुरेवेन्द्रो यज्ञः प्रजापतिरिति । कतमः स्तनयित्नुरित्यशनिरिति कतमो यज्ञ इति पशव इति ॥ ७ ॥

शत० ब्रा० १४।६।९।१–७॥

बृ. आ. उप. ३।९।२

'कौनसी वे तीन और तीस देवताएं हैं ? आठ वसु+ग्यारह रुद्र+और बारह आदित्य=मिलकर इकत्तीस हुए । और एक इन्द्र और एक प्रजापति मिलकर ३३ देव हुए । कौनसे वसु हैं ? अग्नि, पृथिवी, वायु, अंतरिक्ष, आदित्य, द्युलोक, चंद्र और नक्षत्र ये आठ वसु हैं क्यो कि इन मे सब प्राणी निवास करते हैं । कौनसे रुद्र हैं ? जो मनुष्यमें दस प्राण और ग्यारवा आत्मा है, क्यों कि ये शरीरसे निकल जानेपर आदमियोंको रुलाते हैं । कौनसे आदित्य हैं ? वर्षके बारह महिने बारह आदित्य हैं क्यो कि ये सबकी (आयुको) ले जाते हैं । कौनसा इन्द्र और कौनसा प्रजापति ? बिजुली इन्द्र है और यज्ञ अर्थात् पशु प्रजापति है ॥'

यहां विचार करना चाहिए कि वेदोंके ३३ देवताओंका यह स्पष्टीकरण है, अथवा किसी अन्य ३३ देवता विभागका है ।

वेदके ३३ देवताओं में पृथ्वीपर ११ अंतरिक्ष मे ११ और द्युलोक मे ११ देव हैं, और प्रत्येक स्थानपर १० गौण और १ मुख्य है । इस लिये इनमें १२

महिनोंकी कल्पना ठीक नही हो सकती । १२ महिने कोई बारा भिन्न भिन्न देवताएं नहीं हो सकतीं । अथवा होतीं हैं ऐसा माननेपर उनको पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्युलोकमें कौनसे स्थानपर रखना है ? और हमें एक एक लोकमें ११ चाहिए, १२ नहीं चाहिए । तथा जो पशुओंका यज्ञके साथ संबंध बताया है, यही सब युरोपीयन पंडितोंकी अशुद्ध कल्पना की जड है । अस्तु । और एक मतभेद देखीएः—

यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति ॥
तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदुनात्येति कश्चन ॥

अथर्व. १०।८।१६॥

'जहांसे सूर्यका उदय होता है और जहां सूर्य अस्तको प्राप्त होता है, वह हि (ब्रह्म) श्रेष्ठ है ऐसा मै मानता हू । उसका उल्लंघन कोई नहीं कर सकता ।' अथर्ववेदके का. १० सू.८ में यह मंत्र है जिस सूक्तका पहिला मंत्र निम्न लिखित हैः—

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ॥
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

अथ० १०।८।१॥

'जो भूत, भविष्य, वर्तमान अर्थात सबका एक अधिष्ठाता है और जो केवल प्रकाश स्वरूप है, उस श्रेष्ठ ब्रह्मके लिये नमस्कार है।' इस मंत्रसे 'ब्रह्म' शब्दकी अनुवृत्ति सब सूक्तके मंत्रोमे आती है। इसलिये पूर्वोक्त १६ वे मंत्रका अर्थ निम्न प्रकार होता है.—

'जिस श्रेष्ठ ब्रह्मसे सूर्यका उदय होता है और जिस श्रेष्ठ ब्रह्ममें उसका अंत होता है, वही श्रेष्ठ ब्रह्म है ऐसा मै मानता हूं, उस श्रेष्ठ ब्रह्मका कोई उल्लंघन नही कर सकता । ' अर्थात् 'परब्रह्मके कारण सृष्टिके प्रारंभमें सूर्यका उदय होता है, और प्रलयके समय इस सूर्यका उसी परब्रह्मे अस्त होता है, यही परब्रह्म सबसे श्रेष्ठ है, जिसके शासनका उल्लंघन कोई नही कर सकता । अब इस मंत्रके विषयमें शतपथका स्पष्टीकरण देखिएः—

ज्वलिष्याम्येवाहमित्यग्निर्दध्रे । तप्स्याम्यहमित्यादित्यः । भास्याम्यहमिति चन्द्रमाः । एवमन्या देवता यथादैवतं । स यथैषां प्राणानां मध्यमः प्राण एवमेतासां देवतानां वायुः । म्लोचन्ति ह्यन्या देवता न वायुः । सैषाऽनस्तमिता देवता यद्वायुः ॥ ३३ ॥ अथैष श्लोको भवति । यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति ॥

शत० ब्रा० १४।३।३।३४ ॥
बृ० आ० उप० १।६।२२

'मैं जलूंगा ऐसा अग्निने कहा, मै तपूंगा ऐसा सूर्यने कहा, मैं प्रकाशूंगा ऐसा चंद्रमाने कहा, इसी प्रकार अन्य देवताओंने अन्य काम लिये । जिस प्रकार सब प्राणोके बीचमे (श्वासोच्छ्वासरूप) प्राण मुख्य है, इसी प्रकार सब देवताओमे वायु मुख्य है । क्योकि अन्य देवताओका अस्त होता है परंतु वायुका कभी अस्त नहीं होता । इस प्रकार अस्त न होनेवाली वायु देवता है । इसी विषयमे यह श्लोक है **'यतश्चोदेति सूर्यो अस्तं यत्र च गच्छति ।'**

' यह मंत्र संहितामे परब्रह्म विषयक है परंतु उसको यहा वायु पर शतपथ ब्राह्मणके लेखकने लगाया । और निम्न प्रकारकी युक्तियां दी हैं । (१) वायु सब देवताओंमे श्रेष्ठ देवता है क्योकि वह अस्त नही होता, (२) अग्नि बुझ जाता है इसलिये वायुकी अपेक्षा अग्नि कम योग्यता रखता है, (३) सूर्य चंद्र आदि देव अस्त होते हैं इस लिये ये भी वायुकी अपेक्षा कम हैं । इन युक्तियोका खंडन करनेकी आवश्यकता नही, न सूर्यका कभी अस्त होता है और न सूर्यकी योग्यता वायुसे कम है । वेदमंत्रोंके आशयसे पृथिवी स्थानमे अग्नि, अंतरिक्षमे वायु अथवा विद्युत् और द्युलोकमें सूर्य देवता मुख्य है । सूर्य द्युस्थानका देव होनेसे वायुकी अपेक्षा श्रेष्ठ है यह वैदिक कल्पना थी । परतु ब्राह्मणमे सूर्य अस्त होनेके कारण वायुकी अपेक्षा भी कम बन गया । उक्त मंत्रका शतपथ ब्रा० का अर्थ अशुद्ध है । इसी प्रकार कई मंत्रोका अर्थ मूल वेदके आशयसे बिलकुल उलटा दिया है ।

तथा मंत्रोंके विनियोग भी विचित्र दिये हैं । पुरुषसूक्तका विनियोग नरमेधमे १८४ मनुष्य यूपोको बांधनेके पश्चात् उनकी स्तुति और प्रोक्षण करनेके लिये किया है, देखिए —

नियुक्तान्पुरुषान् ब्रह्मा दक्षिणतः पुरुषेण नारायणेनाभिष्टौति । सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपादित्येतेन षोडशर्चेन षोडशकलं वा इदं सर्वं सर्वं पुरुषमेधः ॥

शत० ब्रा० १३।६।२।१२

'यूपोपर नियुक्त किये हुए पुरुषोंकी, दक्षिणसे ब्रह्मा पुरुष नारायणके सहस्रशीर्षा आदि सोलह मंत्रोंसे स्तुति करता है । क्योंकि सोलह कलाओंका यह सब है, और सब पुरुषमेध ही है ।'

इसी शतपथ ब्राह्मणके इस विनियोगसे नरमेधमें १८४ मनुष्योंके बलिदानका संशय युरोपीयन पडितोंको हुआ है । इस देशके भाष्यकारोंनें भी यहा ही से यह कल्पना ली है । यूपोके साथ मनुष्योको बांधना स्पष्ट लिखा है.

अष्टाचत्वारिंशतं मध्यमे यूप आलभते ॥०......॥ ५ ॥

शत. ब्रा. १३।६।२।५

'मध्यम यूपमें ४८ का आलंभन करता है ।' इत्यादि प्रकार लिखा है । इसीके अनुसार पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र लिखते है—'पांचसे २२ कंडिकापर्यंत मंत्रोंसे १८४ पुरुष अग्निष्ठादि ग्यारह स्तंभोके नीचे सत्कारपूर्वक स्थित करे उनके मध्यमें अग्निष्ठ [अग्निके समीपवर्ति यूप] में ४८ और दश यूपोंमें ग्यारह ग्यारह स्थित कर फिर दूसरेमे २६ और स्थित करें ।............ यह ग्यारह यूप अनेक प्रकारके उपकरणोंसे शोभित करने चाहिए, धूप वर्षाकाभी प्रबन्ध करना चाहिए जिसमे किसी प्रकारका किसीको कष्ट न हो, इस प्रकार प्रायः सब जाति, और सब प्रकारके व्यवसाई पुरुषोंको नियुक्त करना चाहिए,......। (यजुर्वेद मिश्रभाष्य-संवत् १९६९ मुद्रित श्रीवेंकटेश्वरयंत्रालय-पृष्ठ. ११६९ देखीए ।)

शतपथ ब्राह्मणका यही आशय है किसीको देखना हो तो कां. १३ देख सकते हैं । यहा थोडेसे वाक्य उदाहरणके लिये उद्धृत करता हूं:—

**तान्वै मध्यमेऽहन्नालभते । अन्तरिक्षं वै मध्य-
ममहः । अन्तरिक्षं वै सर्वेषां भूतानामायतनम् ।
अथो अन्नं वा एते पशवः । उदरं मध्यममहः ।
उदरे तदन्नं दधाति ॥ २ ॥
तान्वै दश दश आलभते ।............॥ ३ ॥
एकादश एकादश आलभते ।.........॥ ४ ॥
अष्टाचत्वारिंशतं मध्यमे यूप आलभते ।...॥५॥
एकादशैकादश इतरेषु ॥..............॥ ६ ॥
अष्टा उत्तमानालभते ॥...............॥ ७ ॥**

उनका मध्यम दिनमें आलंभन करता है। अतरिक्ष मध्यम दिन है। क्योंकि अतरिक्षहि सब भूतोंका स्थान है। अब अन्नहि ये पशु हैं । उदर मध्यम दिन है । क्योकि उदरमेंहि उस अन्नका धारण होता है ॥ दस दस, ग्यारह ग्यारहका आलंभन करता है । ४८ का मध्यम यूपमें आलंभन करता है । ग्यारह ग्यारह इतर यूपोंमे । उत्तम आठोंका आलंभन करता है ।"

इनही बातोंसे, उवटाचार्य, महीधराचार्य, पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र तथा सब युरोपीयन पंडित भ्रात हुए हैं और उन्होंनें लिखा है कि नरबलिदानकी प्रथा वैदिक आर्योंमे अवश्य थी ! ! ! शतपथ ब्राह्मणका इस प्रकार लिखनाहिं इस भ्रात मतका सर्वथैव कारण है । फिर हम बिचारे युरोपीयनोंको किस प्रकार दोष दे सकते हैं ? वे सब मानते हैं कि 'मूल वेदमें नर-मास-हवनका कोई प्रमाण नहीं है, परतु ब्राह्मणके प्रमाणसे आर्योंमें कसाईपनका यज्ञ था ऐसाही मानना पडता है ।' जिस शतपथ ब्राह्मणनें यजुर्वेदके पहिले अध्यायोंके मंत्रोंपर कई पृष्ठ विस्तारपूर्वक लिखे हैं, उसी ग्रंथमें यजु. ३० और ३१ इन दो अध्यायोंपर केवल तीन पृष्ठ भी नहीं हैं, और जो लिखा है वह सब उक्त प्रकार संदेहमय लिखा है ! तथा आगे जाकर कहते हैं:—

कर्म न समाप्त करनेकी सूचना ।

**अथ हैनं वागभ्युवाद । पुरुष मा संतिष्ठिपो
यदि संस्थापयिष्यसि पुरुष एव पुरुषमत्स्य-
तीति । तान्पर्यग्निकृतानेवोदसृजत्तद्देवत्या आ-**

हुतीरजुहोत् । ताभिस्ता देवता अप्रीणात् । ता
एनं प्रीता अप्रीणन् सर्वैः कामैः ॥ १३ ॥

शत. ब्रा. १३।६।२॥

'अब इनको एक शब्द सुनाई दिया । हे मनुष्य यह कर्म समाप्त न कर यदि तूं समाप्त करेगा, तो एक मनुष्य दूसरे मनुष्यको खायेगा । इस शब्दको सुनतेहि (उस यज्ञकर्तानें) अग्निके पास कियेहुए उन सबको खुला कर दिया और उन देवताओके उद्देशसे आहुतियोंकाहि हवन किया । उन आहुतियोंसे देवताएं संतुष्ट होगयीं । और उन संतुष्ट देवताओंने (यजमानकी) सब इच्छाएं पूर्ण की ।'

यद्यपि इसप्रकार नर-मांस-हवनका निषेध शतपथब्राह्मणने किया है, तथापि १८४ मनुष्योंको ११ यूपोंके साथ बाधना, उन सबको अग्निके पास ले जाना, प्रत्येक देवताके उद्देशसे एकएकको नियुक्त करना और त्याग देना, आदि सब विधि नर-मास-यज्ञकीहि बू फैला रहा है । प्रश्न यहां यह है, कि जो बात मूल यजु. ३० मे नही थी, उस बातको शतपथब्राह्मणके लेखक वाजसनेय याज्ञवल्क्यनें क्यों खडी कर दिखाई ? इस प्रश्नका कोई सीधा उत्तर नहीं है, सिवाय इसके कि, इस विषयमे उसनें अपने समयकी प्रचलित बात लिख मारी, परंतु वेदमे कहीं भी इस प्रकारका हिंसामय कर्म न होनेके कारण अंतमे-वधके समय-**'कर्म समाप्त न कर'** ऐसाहि उसको लिखना पडा !!! (१) इस यजु० अ० ३० मे कहीं भी ११ यूपोंका उल्लेख नहीं है, (२) फलाने यूपमे इतने मनुष्य लगाओ, ऐसाभी कहा नही लिखा, (३) उन १८४ मनुष्योंको अग्निके पास ले जा कर फिर कर्म न समाप्त करते हुए उनको छोड देनेकाभी वेदमे कही नही लिखा । इसी प्रकार वेदमे न कही हुई बाते शतपथ ब्राह्मणमे तथा अन्य ब्राह्मणोमें भी लिखी है । इसलिये इनका कथन वैदिक धर्मके साथ संमिलित नहीं करना चाहिए । कोईभी यह नही सिद्ध कर सकता कि, यजु. अ० ३० के विषयमे नरमेध विषयक शतपथकी लिखी हुई बातें और मूलवेद मंत्रोंकी कही हुई बातें परसर अनुकूल हैं । दोनोंमे इतना भेद है कि दोनोंकी सगति हो नहीं सकती ।

इसलिये मैने पहिले लिखा है, कि ब्राह्मणग्रंथमें जो कहा है उसका आरोप

वेदके मंत्रोपर नहीं होना चाहिए। ब्राह्मणग्रंथकी बातें वेदानुकूल हैं, ऐसा युरोपीयनोंका भ्रम होनेके कारण उन्होंनें ब्राह्मणग्रंथोंके सब दोष वेदके सिरपर मढे हैं। वेद ग्रंथ इतने पुराणे हैं कि उनके धर्मविधि ब्राह्मणग्रंथ बननेके समय प्रायः भूले जा चुके थे। इसीलिये स्वयं ब्राह्मणग्रंथोमे वेदके अर्थके विषयमे अनिश्चितता स्पष्ट दिखाई देती है, जिसके थोडेसे उदाहरण मैनें पहिले बताये हैं।

(१०) ऋषिमुनियोंके ग्रंथोंका प्रामाण्य।

'मै ब्रह्मासे लेकर जैमिनीमुनीतक सब ऋषिमुनिकृत ग्रंथोको प्रमाण मानता हूं।' इस प्रकार आचार्य कहते हैं। यह ठीक है। क्योंकि वेद स्वतः प्रमाण हैं और शेष सब ग्रंथ वेदके अनुकूल होनेपर प्रमाण हैं। ब्रह्माका ग्रंथ हो अथवा याज्ञवल्क्यका ग्रंथ हो, यदि वह वेदके अनुकूल होगा तोही प्रमाण होगा। अर्थात् जितना उसका अंश वेदके अनुकूल होगा उतनाही प्रमाण होगा। ब्राह्मणग्रंथ, स्मृतिग्रंथ सूत्रग्रंथ और पुराणग्रंथ इन सबका प्रामाण्य इसी प्रकार वेदकी अनुकूलतासे है। अर्थात् 'ब्रह्मासे लेकर जैमिनीतक ऋषिमुनियोंके सब ग्रंथ' वहांतकही प्रामाणिक हैं, कि जहांतक वे वेदके अनुकूल हैं। अर्थात् अन्य ग्रंथोंके बोझके नीचे वेदके उच्च मतको दबाना किसी समयमे भी उचित नहीं। इसी कारण **'वेदोंका अर्थ वेदकेही अंतर्गत प्रमाणोंसे करना चाहिए'**, और किसी अन्य प्रमाणोंपर सर्वथा अवलंबित नही रहना चाहिए। इसी पद्धतिका अवलंबन स्वाध्याय-मंडल कर रहा है।

(११) क्या ब्राह्मणग्रंथोंके शब्द यौगिक नहीं हैं?

वास्तविक बात लोकोंसे छिपाना किसी समय भी अच्छा नहीं, और न लोकोंके इस समयके अज्ञानका फायदा उठाकर हमको अपना निर्वाह करना उचित है। ब्राह्मणग्रंथोमे अनेक प्रकारकी भ्रमजालकी बातें हैं, उन सबको प्रमाण नही माना जा सकता। दूसरी बात यह है, कि जो कहते हैं कि, ब्राह्मणग्रंथ भी यौगिक गुह्य अर्थ रखते है उनको उचित है कि वे सब ब्राह्मण ग्रंथोंकी आद्योपान्त संगति वेदके साथ करके बतावें। जबतक किसीने इस प्रकार संगति नहीं बताई, और केवल 'यौगिक अर्थ' के पडदेके पीछे जो

छिपना चाहते हैं, उनसे तबतक बात नही हो सकती, कि जबतक अपने पक्षकी सिद्धता करनेकी शक्तिके साथ वे शास्त्रार्थके क्षेत्रमे न आयेगे।

(१२) ब्राह्मण और सूत्रग्रंथोंके विनियोग।

ब्राह्मण ग्रंथ कर्मकांडियोंके है। कर्मकाडी लोक विशेषकर अर्थकी परवाह कभी नहीं करते थे। मंत्रोका यज्ञरूप कर्मकाडमे विनियोग करनाही उनका मुख्य काम था। ध्वज उठानेके लिये मंत्र, आसन झिडकनेके लिये मंत्र, पानीको छूनेके लिये मंत्र इसप्रकार सेकडों छोटे मोटे कर्मोंमे मंत्रोका विनियोग हुआ है। मंत्रोंके अर्थके साथ विनियोगका कर्म देखा जाय तो इतना परस्पर विरोध है कि उसकी सगति स्वयं विनियोग कर्ताभी नही लगा सकते। देखीएः—

इस अ० ३० के मंत्रोका विनियोग निम्न प्रकार है। १ ले मंत्रसे ४ थे मंत्रतक 'आज्य-आहुति-दान' मे विनियोग है। मंत्र ५ से अततक सब मंत्रोका विनियोग यूपमे पुरुषोंका नियोग करनेके लिये हैं। शब्दोके अर्थके साथ इस कर्मका कोई सबंध नहीं है। तथाः—

'इषे त्वा' का विनियोग पलाशवृक्षकी शाखा काटनेके लिये किया है। '**इषे त्वा** छिनद्मि।' इसप्रकार 'छिनद्मि' का अध्याहार करके इस वाक्यका अर्थ करते हैं कि 'हे पलाशशाखे! मै तुमको अन्नके लिये काटता हूं।'

'ऊर्जे त्वा' का इसीप्रकार विनियोग करके अर्थ करते हैं कि 'हे पलाशशाखे! तुमको बलके लिये काटता हूं।' इस प्रकार निरर्थक विनियोग किये हैं। और याज्ञिकोने सब वेदके आशयको बिघाडा है। इन मंत्रोमे 'शाखे' ऐसा अध्याहार करनेके लिये तथा 'छिनद्मि' ऐसा अध्याहार करनेके लिये कोई प्रमाण नही। देखीए मंत्रोका क्रमः—

इषे त्वा। ऊर्जे त्वा। वायव स्थ। देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे। आप्यायध्वम्।

यजु. १।१॥

किसी पदका अध्याहार न करते हुए इसके अन्वय मंत्रोंके पदोके साथही निम्न प्रकार बनते हैं:—

(१) **सविता देवः त्वा इषे प्रार्पयितु ।**–(उत्पादक ईश्वर तुम्हें अन्नके लिये अर्पण करे ।)

(२) **सविता देवः त्वा ऊर्जे प्रार्पयतु ।**–(उत्पादक ईश्वर तुम्हे बल के लिये अर्पण करे ।)

(३) **वायवः स्थ ।**–(तुम सब वायु रूप अर्थात् प्राणरूप हैं ।)

(४) **सविता देवः वः श्रेष्ठतमाय कर्मणे प्रार्पयतु ।**—(उत्पादक ईश्वर तुम सबको अत्यंत उच्च कर्मके लिये अर्पण करे ।)

(५) **आप्यायध्वम् ।**—(तुम सब उन्नतिको प्राप्त हो जाओ ।)

इस प्रकार इनका मूल शब्दार्थ है, और इससे प्रत्येक मनुष्यको प्रत्येक दिनके व्यवहारके लिये उच्च उपदेश मिल सकता है। परतु याज्ञिक लोकोंने विपरीत विनियोग करके अर्थका अनर्थ किया है। इसलिये ब्राह्मण और सूत्र-ग्रंथोके विनियोग बिलकुल प्रमाण मानने योग्य नही है । हा, जहां मंत्रका अर्थके साथ विनियोग ठीक प्रतीत होगा, उतनाही विनियोग प्रमाण मानने योग्य है । क्योकि सब विनियोग अर्थके अनुकूलहि होने चाहिए ।

(१२) ब्राह्मणग्रंथोंका अहिंसामें तात्पर्य ।

यद्यपि ब्राह्मणग्रंथोमे बहुतसे संशयरूप विधान हैं, तथापि उन सब ग्रंथोका तात्पर्य अहिंसामेहि है, देखीएः—

> **पुरुषं ह वै देवा अग्रे पशुमालेभिरे । तस्याल-ब्धस्य मेधोपचक्राम । सोऽश्वं प्रविवेश । तेऽ-श्वमालभन्त । तस्यालब्धस्य मेधोपचक्राम । स गां प्रविवेश । ते गामालभन्त । तस्यालब्धाया मेधोपचक्राम । सोऽविं प्रविवेश । तेऽविमाल-भन्त । तस्यालब्धस्य मेधोपचक्राम । सोऽजं प्रविवेश । तेऽजमालभन्त । तस्यालब्धस्य मे-धोपचक्राम ॥ ६ ॥ स इमां पृथिवीं प्रविवेश । तं खनन्त इवान्वीषुः । तमन्वविन्दन् । ताविमौ व्रीहियवौ ॥**

शत, ब्रा. १।२।१।६॥

"सबसे पहिले देवोंनें मनुष्यका आलंभन किया। उसका हनन होतेहि उसमेसे पवित्र-भाग चले गया। वह घोडेमे प्रविष्ट हुआ। उन्होनें घोडेका आलंभन किया। उसका हनन होतेहि उसमेंसे पवित्र भाग चलेगया। वह गायमें प्रविष्ट हुआ। उन्होंनें गायका आलंभन किया। गायका हनन होतेहि उसमेसे पवित्र भाग चलेगया। वह भेडमे प्रविष्ट हुआ। उन्होंनें भेडका आलंभन किया। उसका हनन होतेहि उसमेसे पवित्र भाग चलेगया। वह बकरेमे प्रविष्ट हुआ। उन्होने बकरेका आलंभन किया। उसका हनन होतेहि उसमेसे पवित्र भाग चलेगया। वह इस भूमीमे प्रविष्ट हुआ। उसको खोद खोदकर धूंडा। और उसको प्राप्त किया। वोह हि ये चावल और जौ हैं।"

इससे स्पष्ट है कि पशुवध होतेहि उसमे हवन करने योग्य पवित्र भाग नहीं रहता। सब पवित्र भाग जो हवन करने योग्य है वह भूमीसे चावल और जौ रूपसेहि उगता है। इसलिये इन धान्योकाहि हवन करना चाहिए न की पशुमांसका, क्योकि उसमे पवित्र भाग प्राप्तहि नही होता। प्राणीके शरीरसे हवनीय पवित्र भाग चले जानेके कारण सब मांस अपवित्र बनकर रहता है, इसलिये उसका हवन नहीं होना चाहिए। इसीप्रकारका विधान ऐतरेय ब्राह्मण २।८ में है। पुनरुक्तिके भयसे यहा नही दिया। शब्द एक जैसेहि हैं। और तात्पर्य भी यही है। यद्यपि इस प्रकारके विधानोंका तात्पर्य अहिंसाके यज्ञमेहि है, तथापि इस प्रकारके विधानोसे एकसमय पशुयज्ञ किये जाते थे इस प्रकारका भाव निकलताही है। यह भाव किसी प्रकार भी मूलवेद मंत्रोंमे नही है। इसलिये इसप्रकारके अहिंसाके वाक्योको भी प्रमाण मानना उचित नहीं है। यह निषेधहि प्राचीन कालका विधि बता रहा है।

तथा इसके आगे जाकर धान्यका आटाही सच्चा पशुका हवनीय भाग है ऐसा कहा है.—

> **अस्य एते सर्वे पशव आलब्धाः स्युस्तावद्वीर्य-**
> **वद्धास्य हविरेव भवति।**

शत. ब्रा. १।२।६।७॥

'इसको सब पशुओंके आलंभनका फल प्राप्त होता है, इतना इसका प्रभाव

होता है, जो केवल (पिष्टका) हवन करता है।' इस प्रकारके वाक्य पूर्व-कालीन पशु-मास-हवनकी प्रथा बताते हैं। इसलिये ब्राह्मणग्रंथोके हिंसाके निषेध वाक्यभी विशेष प्रमाण मानने भोग्य नहीं। उनसे इतनाही तात्पर्य-लेना है, कि ब्राह्मणग्रंथोंका आशय भी धान्यका हवन करनेकी ओर है न की मास-हवनकी ओर। परंतु यहा यह विशेषकर स्मरण रखना चाहिए कि इस प्रकारकी जो बातें लिखी हैं वे सब उनकी अपनी हैं, उनका कोई सबंध वेदके मत्रोके साथ नही लगाया जा सकता। वेदके मंत्र शुद्ध और उच्च कर्मका उप-देश स्वतंत्रतापूर्वक कर रहे हैं।

(१४) ब्राह्मणग्रंथोंसे हमें क्या लाभ होगा ?

उक्त दोष होनेपर भी अन्य ग्रंथोंकी अपेक्षा ब्राह्मण-ग्रंथ हमें अधिक सहा-यता दे सकते हैं। (१) मंत्रोंके आध्यात्मिक अर्थ जैसे ब्राह्मण और आर-ण्यक ग्रंथोमें उपलब्ध हो सकते हैं, वैसे किसी अन्य ग्रंथोंमें नही। वेदमंत्रोका आध्यात्मिक अर्थ सबसे श्रेष्ठ होनेके कारण, इस अर्थके लिये हमें ब्राह्मणग्रंथों-कीहि शरण लेना चाहिए। (२) आधिभौतिक और आधिदैविक अर्थोंकी संगति लगानेकी सूचनायें ब्राह्मणग्रंथोमें स्थान स्थानपर विद्यमान हैं। यद्यपि उनमे किसी किसी स्थानपर दोष हैं, तथापि नि.संदेह उनके आधारसे हम अपना मार्ग आक्रमण कर सकते हैं। (३) ब्राह्मणग्रंथोंकी गाथाएं और कल्पित कथानके भी वेदविद्याका स्पष्टीकरण बतानेवाली निःसंदेह हैं। (४) वैदिक शब्दोकी व्युत्पत्तिया और निरुक्तिया जैसी ब्राह्मणग्रंथोमे उपलब्ध हो सकती हैं वैसी किसी अन्य स्थानपर नहीं। यदि ब्राह्मणग्रंथ उपलब्ध न होते, तो शब्दोकी निरुक्तियां, जो वैदिक शब्दोके गूढ आशयको बतातीं हैं, जानना असभव था। अन्य सब सहायताओकी अपेक्षा इस विषयकी सहायता अत्यंत महत्वपूर्ण है। (५) समकालीन दस्युओमें जो अनाचार फैले हुए थे, उनको दूर करने के लिये, और उनको ब्राह्मणकालीन आर्योंके सदाचाररूप छत्रके नीचे लानेके लिये जो जो युक्तिया ब्राह्मणग्रंथोके लेखकोनें की थी; उनका ज्ञान होनेसे वेदके मुख्य सिद्धातका परिज्ञान हो सकता है। जैसा दस्यु अनार्य लोकोमें विविध मासभोजी लोक थे, और वे अपने कल्पित देवोके लिये अपने अपने भोज्य पशुओका बलि दिया करते

थे। नरमांसभक्षक अनार्य नरबली देते थे, इसी प्रकार घोडा, बैल, बकरा आदिका मांस खानेवाले अनार्य उन उन पशुओंकी कुर्बानी किया करते थे। अब इन दस्युओके दस्युभावोंको हटाना, और उनको आर्य बनाना उन वैदिक धर्मावलंबियोका कार्य था, कि जो उस समयके नेता और उपदेशक थे। उन्होंने बडी चतुरतासे यह कार्य किया ऐसा ब्राह्मणग्रंथोको पढनेसे पता लगता है। वैदिक उपदेशक अनार्य-दस्युओके मंडलीमें जाकर उनको निम्न प्रकार उपदेश करते थे.—

'भाइयो! देखो! तुम्हारे अदर जो नरबली, अश्वबली, गोबली, अजबलि देनेकी प्रथा चली है, इसका परिपूर्ण अनुभव प्राचीन कालमें देवोने लिया था। देखो। प्राचीन कालमें देवोंने मनुष्यका बलि दिया। परंतु आश्चर्य यह हुआ की, मनुष्यके शरीरमें जो पवित्र भाग था, वह वहासे चलेगया और घोडेमें जाकर छिप गया। इसलिये देवोंने घोडेका बलि दिया। परंतु वहां-सेभी पवित्र भाग चलेगया और गायमें जाकर छिप गया। इसीप्रकार क्रमसे गाय, मेंड और बकरेमें वह पवित्र भाग छिप गया था। जब देवोंने अतमें बकरेका बलि दिया, तब वह पवित्र भाग जो वहासे भागा, वह जमीनमें जाकर रहा और धान्यके रूपसे ऊपर आया। अब, भाईयो देखो, कि जब मनुष्यादि प्राणियोका बलि देनेपर उनके शरीरमेंसे पवित्र भाग गया था ओर देवभी उसको प्राप्त नहीं कर सकते थे, तब तुमको उस पवित्र भागकी प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है? जब तुम अपने देवताके उद्देशसे बलि देते हो, उसी समय उस शरीरका पवित्र भाग वहांसे भाग जाता है और अपवित्र मुर्दा तुम्हारे हाथमें रहता है, जिसका कि तुम अपने देवताके लिये अर्पण करते हो। जब तुम अपवित्र पदार्थका अपने देवताओंके लिये अर्पण करोगे, तब तुम्हे देवताका सहाय्य किस प्रकार हो सकता है? अपवित्र अर्पणके कारण देवताओंका क्रोध तुम्हारेपर हो रहा है और तुम्हारा नाश हो रहा है। यदि तुम देवताओंकी प्रीति चाहते हो तो पवित्र भागका अर्पण करो। अर्पण करने योग्य पवित्र भाग धान्यरूपसे ऊपर आया है। उसीका अर्पण करनेसे सब पशुबलिके अर्पणका पुण्य मिल सकता है और अर्पण शुद्ध और पवित्र होनेके कारण देवतायें सतुष्ट होकर तुम्हारी सब कामनायें परिपूर्ण कर सकतीं हैं।

इसलिये यदि तुम देवताओकी प्रीति चाहते हो, तो धान्यकाहि पवित्र अर्पण करो और मुर्दोका अपवित्र अर्पण न करो ।'

पूर्वोक्त ब्राह्मणवाक्योंका यह आशय है । अनार्योंको आर्य बनानेके लिये, दस्युओसे दस्युभाव हटानेके लिये यह युक्ति थी । जिसका आशय स्पष्ट होनेपरभी युरोपीयन पंडित समझे नहीं, और मानने लगे हैं कि एक कालमें आर्योंमेंहि नरबलि आदिकी प्रथा थी । परंतु वास्तव बात बिलकुल उलटी थी । अहिंसाका प्रचार करनेकी यह एक उस समयकी युक्ति थी । यह बात और है कि कईयोको यह युक्ति पसंद न होगी । परतु इससे यह बात कभी सिद्ध नही होसकती, कि आर्योंके वैदिक धर्ममे एक समय नरबलि आदिकी प्रथा थी । यदि इससे कुछ सिद्ध हो सकता है, तो इतनाही सिद्ध होसकता है कि उस कालके धर्मोपदेशकोनें इस प्रकारकीं युक्तिया, गाथाएं और कल्पित कथाएं घडकर नीच लोकोको उच्च बनानेका पवित्र कार्य किया था । धर्मका यही काम है कि वह अनार्योंको आर्य बनावे, अधार्मिकोको धार्मिक बनावे और दस्युओको सदाचारी बनावे ।

इस प्रकार ब्राह्मणग्रंथोंसे अनेक लाभ हो सकते हैं । परंतु इन ग्रंथोंके प्रमाण लेनेके समय बडी सावधानता रखनी चाहिए । वेदके आशयके साथ जो प्रमाण मिलते हैं, उतनेहि मानने योग्य होगे; परतु जो विरोधी होगे उतने सब दूर रखने होगे ।

(१५) क्या वेदमें हिंसा नहीं है ?

जो लोक वेदमे हिंसा है और नरमेध, अजमेध, गोमेध आदि हिंसामय कर्म है, ऐसा कह देते है, उनको निम्न मंत्र अवश्य देखने चाहिएः—

अश्वं........मा हिंसीः......॥ ४१ ॥

गां मा हिंसीरदितिं विराजम् ॥ ४२ ॥

अविं........मा हिंसीः......॥ ४३ ॥

इमं मा हिंसीर्द्विपादं पशुम् ॥ ४७ ॥

इमं मा हिंसीरेकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनम् ॥ ४८ ॥

घृतं दुहानामदितिं जनाय…मा हिंसीः ॥ ४९ ॥

इममूर्णायुं……मा हिंसीः……॥ ५० ॥ यजु. अ. १३

ओषधे त्रायस्व । स्वधिते मैनं हिंसीः ॥ १ ॥ यजु. अ ४

मा हिंसिष्ट पितरः केनचिन्नो ॥ यजु. १९।६२॥

मा हिंसीः पुरुषम्……॥ ३ ॥ यजु. १६।३॥

मा हिंसीस्तन्वा प्रजाः ॥ यजु. १२।३२॥

'घोडेकी हिंसा न कर।(अ-दिति) हनन करने अयोग्य गाय है, इसलिये गायकी हिंसा न कर। भेडकी हिंसा न कर । दो पांववाले मनुष्य आदि प्राणियोकी हिंसा न कर। घोडेकी हिंसा न कर। चूंकि लोकोंको गाय दूध और घी देती है, इसलिये उनकी हिंसा न कर । बकरेकी हिंसा न कर क्योकि वह ऊन देता है। हे औषधी! रक्षण कर, हे शस्त्र, हिंसा न कर। हे रक्षको, किसीकी हिंसा न कीजिए। पुरुष अर्थात् मनुष्यकी हिसा न कर। प्रजाओकी हिंसा न कर ॥' इस प्रकार हिंसाका निषेध है। और देखीए:—

मा हिंसिषुर्वहतुमुह्यमानम् ॥ अथर्व १४।२।९

मा हिंसिष्टं कुमार्यं स्थूणे देवकृते पथि ॥ अथर्व. १४।१।६३

'ओढनेवाले बैल आदिकी (अधिक जोरसे) ओढवानेके लिये हिसा न कर। देवोके विस्तृत मार्गमे (कु-मार्य; कु-मर्य) पृथ्वीके ऊपरके मनुष्य आदि मर्य अर्थात् मर्त्य प्राणीकी हिसा न कीजिए।' और देखीए —

व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिलम् ॥
एष वां भागो निहितो रत्नधेयाय दन्तौ
मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥ अथर्व. ६।१४०।२॥

'चावलोंका भोजन कीजिए, जौ खाईए, उडद अथवा तिल भक्षण कीजिए। रमणीयताके लिये आप सब लोकोंका यही भाग है। आपके दात

रक्षकोंकी तथा मान्यकर्ताओंकी हिंसा न करें।' वेदका यह आशय है। इसप्रकार मनुष्य, घोडा, गाय, बैल, भेड और बकरा आदि पशुकी हिंसा करनेका निषेध वेद कर रहा है, फिर यज्ञमे उक्त पशुओंका वध किस प्रकार किया जा सकता है। वधकर्ताओंको दूर करनेकी आज्ञा वेद करता है:—

आरे गो-हा नृ-हा वधो वो अस्तु...॥ ऋ. ७।५६।१६

आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नम्........॥ ऋ. १।११४।१०

'गायका वध तथा मनुष्यका वध करनेवालेको दूर करो।' इस प्रकारकी वेदकी आज्ञा है। तात्पर्य वेद अहिंसामय कर्मोंका उपदेश कर रहा है। यह बात '**अ-ध्वर**' शब्दसे भी स्वयं सिद्ध है, क्योकि इस शब्दका अर्थ '**अ-हिंसा**' ऐसाहि है, और '**अ-ध्वर्-यु**' (अ-ध्वर्यु) का अर्थ अहिंसा-मय कर्मोंका प्रयोग करनेवाला है। इन बातोका विचार करनेसे वेदका अहिंसाका भाव ज्ञात हो सकता है।

यहां इतना कहना आवश्यक है कि, जैन और बौद्धोंके समान वेदकी अहिंसा सार्वत्रिक नही है। साप, बिच्छू, वाघ आदि क्रूर प्राणियोंका तथा शत्रुभूत क्रूर मनुष्योका वध करनेके लिये वेदकी आज्ञा है। जहा मनुष्य-समाज होगा वहा युद्धादिमे मनुष्यवध होनाही है। धर्मयुद्धमे मरनेसे उच्च गति होती है, और ऐसे स्थानोपर मनुष्योका वध करनाहि चाहिए। इस प्रकार वेदके उपदेशोंका भाव है। इन सब प्रमाणोको यहां उद्धृत करके इस भूमिकाको अधिक लंबा बढाना मै आवश्यक नहीं समजता। क्योंकि इस विषयकी अन्य बाते अश्वमेध अजमेध आदि प्रकरणोमे अपने अपने प्रति-पादनके साथ आनेवालीं हैं।

(१६) 'पुरुषमेध' के विषयमें महाभारतकी साक्षी।

इस प्रकार मतभेदोकी समालोचना करनेके पश्चात् अब थोडा ऐतिहासिक निरीक्षण करना चाहिए। जरासंध नामक एक अनार्य राजा पाडवोंके समय बडा शूर और प्रतापी था, जिसनें अनेक राजाओका पराभव करके उनको कारागृहमे इसलिये ला कर रखा था, कि उन सबके बली अपनी देवताकी

तृप्तिके लिये देकर नरमेध किया जाय। इस जरासंधकी इच्छाका निषेध करनेके लिये श्रीकृष्ण, भीम और अर्जुन उसके पास गये थे। यदि इन आर्य राजाओका कहना वह मानता और सुलह करता तो वह बच जाता, परंतु आर्यमतका स्वीकार न करनेके कारण तथा अपनेहि अनार्यमतपर दृढ रहनेके कारण भीमने उस जरासंधको द्वंद्वयुद्धमें मार डाला, और सैंकडों राजाओका होनेवाला बलिदान बद किया। देखीएः—

> त्वया चोपहृता राजन् क्षत्रिया लोकविश्रुताः॥
> तदागः क्रूरमुत्पाद्य मन्यसे किमनागसम्॥
> राजा राज्ञः कथं साधून् हिंस्यान्नृपतिसत्तम॥
> यद्राज्ञः संनिगृह्य त्वं रुद्रायोपजिहीर्षसि॥
> अस्मांस्तदेनोपागच्छेत्कृतं बार्हद्रथ त्वया॥
> वयं हि शक्ता धर्मस्य रक्षणे धर्मचारिणः॥
> मनुष्याणां समालंभो न च दृष्टः कुतश्चन॥
> स कथं मानुषैर्देवं यष्टुमिच्छसि शंकरम्॥
>
> —महाभारत सभा. ५५।८६१

श्रीकृष्ण जरासंधसे कहता है—'हे राजा! तुमने प्रसिद्ध क्षत्रियोंको पकडकर रखा है। तेरा भयानक पाप होता हुआ भी तुम अपने आपको कैसे निष्पाप समझते हो? हे राजाधिराज! उत्तम राजाओकी किसप्रकार एक राजा हिंसा करे? तुम इतने राजाओको बंदिखानेमे रखकर रुद्रदेवताके लिये उनका बलिदान करना चाहते हो? यदि तुमने वह बलिदानका कर्म किया, तो हम सबको वह पाप लगेगा, क्योकि हम स्वयं धार्मिक लोकोंका रक्षण करनेमे समर्थ है। मनुष्योका बलिदान किसी भी स्थानमे हमनें नहीं देखा। तो तूं किसप्रकार मनुष्योके मासका हवन करके शंकरका यजन करनेकी इच्छा करता है?'

इससे पता लग सकता है कि, आर्य राजालोक नरबलिदानका अत्याचार अपने राज्यमे तथा अपने पासके राज्योमें करने नही देते थे। और इस प्रकारके कर्म, जब अनार्य राजालोक अपनी शक्तिकी घमंड करके, करने लगते थे, तब युद्धतक नौबत पहुंचती थी। जैसा कि जरासंधके साथ भीमका

महायुद्ध हुआ और जरासंध मारा जानेके पश्चात् सब कारागृहमे रखेहुए राजाओंको खुला किया गया। आर्यत्व और अनार्यत्व गुणकर्मोसे था न कि केवल जन्मसे। इसी कारण आर्योंका अनार्योसे शरीरसंबंध होनेपरभी उनका अनार्यत्व वैसाहि समझा जाता था। इसी कारण जरासंध, रावण आदिकोंको राक्षस माना गया था और कई राक्षसोकी लडकियोकी शादिया आर्य राजा-ओके साथ भी होगयीं थी। अस्तु। इसप्रकार नरबलिदानका श्रीकृष्णमहा-राजने निषेध किया था। इस प्रकार नरबलिदान करना अनार्योका कार्य था और आर्य राजालोक उसका निषेध किया करते थे। इसी दृष्टिसे ब्राह्मणग्रंथोके उल्लेख देखने चाहिए। ऊपर दिये हुए महाभारतके श्लोकोमें **'मनुष्याणां समालंभो न च दृष्टः कुतश्चन।'** (नरबलिदान कहा भी देखा नहीं) यह वाक्य बडा विचार करने योग्य है। आर्य राजाओका किया हुआ नरमास-यज्ञ हमने आजतक सुना नहीं, यह भाव श्रीकृष्णजीका है। जो बात सुनीभी नही वह देखनी कहां ? इस प्रकार न सुना और न देखा हुआ भयानक कर्म जरासंध कर रहा है, हमारे जैसे शक्तिशाली आर्य राजाओकी विद्यमानतामें उक्त घोर कर्म नहीं होना चाहिए। यदि जरासंध सामोपचारसे नही सुनेगा, तो उसके साथ युद्ध करके उनको मनवाना हमारा कार्य होगा। उक्त कथामे यह भाव मुख्य है। उक्त कथामे महाभारतमे कई ऐसे श्लोक हैं कि जिनका आशय 'असवर्ण नरबलि' का दान करनेमे है ऐसा टीकाकार कहते है, परतु 'मनुष्योका आलभन हमने कहा भी देखा नही' ऐसा जो ऊपर वाक्य दिया है, उस वाक्यके साथ इसप्रकारका आशय विरुद्ध होनेसे ग्राह्य नही माना जा सकता।

(१७) 'नर-यज्ञ' वाचक शब्द वेदमें नहीं हैं।

पुरुष-मेध, नर-मेध, मनुष्य-यज्ञ, नर-यज्ञ, नृ-यज्ञ ये अथवा इस भाववाले शब्द चारो वेदोमें किसी स्थानपर नही है। अर्थात ये शब्द पीछेसे घडे गये है। यद्यपि इन शब्दोंमें प्रारंभमे कोइ बुरा भाव नही होगा, तथापि ये नाम वेदमंत्रोके समकालीन नही है और निःसदेह आधुनिक है। ये नाम जिस किसी समय प्रारंभ हुए होगे, प्रारंभमे इनका अर्थ वेदके आशयके अनुकूलहि होना अधिक संभवनीय है। क्योकि वेदके सब अध्यायका तात्पर्य बतानेके

लिये ये नाम प्रारंभमे शुरू हुए है। पीछेसे स्वेच्छाचारी लोकोंनें मनमाने आचार प्रचलित किये और उन भिन्न आचारोंके कारण उन शब्दोका अर्थ भी भिन्न भिन्न होगया। इसलिये हमें भी इन शब्दोंके मूलहि अर्थ देखने चाहिए। इन शब्दोके जो मूल अर्थ होते थे उनका संग्रह पूर्वस्थलमे किया है वहाहि पाठक उन अर्थोंको देखे और उनके आशयको सोचे।

(१८) नरमेधका विषय कहां कहां है ?

वाजसनेय यजु. अ. ३० और ३१ मे मुख्यतः यह विषय है। तैत्तिरीय संहितामें यह विषय नही है, परंतु तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।४।१।१ में वाजसनेय संहितासेहि लिया है। ऋग्वेद मंड. १।२४-३० तक ९७ मंत्र हैं उनका संबंध नरमेधसे बताया जाता है, जिनका विचार स्वतंत्रतापूर्वक इसके उत्तरार्धके अंतमे होगा और साथ साथ ऐतरेय ब्राह्मणकी शुन शेपकी कथाका भी विचार किया जायगा। शतपथ ब्राह्मणके विवेचनका तात्पर्य पूर्व स्थलमें विस्तारपूर्वक बतायाही गया है। इसके अतिरिक्त पुराणोमे नरमेधकी कथाएं नही हैं, केवल शुन.शेपकीहि है। अनार्य जरासंधकी कथा महाभारतमे आई है उसका वर्णन पहिले होचुका है। बस इतनेही स्थानोपर नरमेधका उल्लेख आया है। अब हमें प्रथमत यजु. अ. ३० का भाव देखना है।

(१९) यजुर्वेद अ० ३० का आशय।

'हे सबके उत्पन्नकर्ता ईश्वर! मनुष्योमें सत्कर्मकी प्रेरणा करो और सत्कर्मके पालनकर्ताको उन्नतिकी प्राप्तिके लिये प्रेरित करो। ज्ञानसे पवित्र बनाहुआ उत्तम दिव्य उपदेशक हम सबके ज्ञानको पवित्र बनावे। और उत्तम वक्ता हम सबका भाषण मीठा बनावे॥ उस उत्पादक ईश्वरके श्रेष्ठ तेजका हम सब ध्यान करते हैं, ताकि वह हम सबके बुद्धियोको उन्नतिकी ओर प्रेरित करे॥ हे उत्पादक ईश्वर! सब दुष्ट भावोको दूर कर और सब अच्छे भावोको हम सबके पास कर॥ विलक्षण सिद्धिके वसु नामक धनका सब लोकोंमे योग्य विभाग करनेवालेकी, सबको उत्साहमय प्रेरणा देनेवालेकी तथा सब मनुष्योंको सुशिक्षित करनेवालेकी हम सब प्रशंसा करते हैं॥ ज्ञानके लिये विद्वानको प्राप्त करता है, शौर्यके लिये क्षत्रियके पास पहुंचता है, सब

मनुष्योंके लिये वैश्यको नियुक्त करता है, और परिश्रमके कर्मके लिये शूद्रको रखता है ॥ ३० ॥"

इसीप्रकार कर्मविभाग आगेके मंत्रोंमें बताया है। उसको पाठक स्पष्टी-करणमें भलीप्रकार देख सकते हैं। उसकी द्विरुक्ति यहां करनेकी आवश्यकता नहीं। यजु. अ० ३० के पहिले पांच मंत्रोंका भाव ऊपर दिया है, उसको देखनेसे किसीप्रकार भी नरके बलिदानका विचार उनमें कही भी प्रतीत नहीं होता। 'मनुष्यत्वका विकास' करनेके लिये जिन जिन बातोंकी आवश्यकता है उन उन बातोंका उल्लेख उनमे है। तथा अवशिष्ट अध्यायमें विशिष्ट गुणोका विकास करनेके साधनोंका वर्णन किया है। इसलिये इस अध्यायको नर-बलि-दानका सूचक मानना, समझना अथवा बताना, तथा इस अध्यायसे नर-बलि दानकी प्रथा आर्योंमे अथवा वैदिक धर्ममे थी ऐसा अनुमान करना, सर्वथा भ्रांतिका चिन्ह है। (१) सबको सत्कर्मकी प्रेरणा करना (२) सबकी ज्ञानसे शुद्धि करना, (३) एक ईश्वरकी सामुदायिक उपासना करना, (४) सद्भावोंको पास करना और दुष्टभावोंको दूर हटाना, (५) ज्ञान, बल, धन, कुशलता इन चार वसुओंका सब लोकोंमे योग्य विभाग करना, (६) कर्मविभाग, कर्मका उत्साह और सुशिक्षा इनके द्वारा सबका भला करना; यह भाव इस अध्यायके पहिले चार मंत्रोंका है। तथा मं० ५ से अध्यायसमाप्तितक वसुविभागका प्रकरणहि चला हुआ है। उसका प्रकरणशः वर्णन स्पष्टीकरणमे किया है। उससे पता लग जायगा कि नरमेधका वैदिक आशय कितना अच्छा था और उसको कर्मकाडी लोकोने कहातक गिराया।

(२०) पुरुष शब्दका अर्थ।

अध्याय ३० में पुरुष शब्द नहीं है। अ० ३१ मे पुरुष शब्द आया है। वहांहि उसका विस्तृत अर्थ पाठक देख सकेंगे। यहा इतनाही बताना है कि इस पुरुषमेधमे **'पुरुष'** शब्दसे मुख्यतया 'परमेश्वर, परमात्मा, अथवा परब्रह्म' लिया जाता है। और यही बात युरोपीयन लोकोको खटकती है। पुरुषमेधसे नर-बलि-दानकी कल्पना करनेमे जो बडी भारी रुकावट है वह यही है। आगामी अध्याय ३१ में जो वर्णन है उससे स्वयं सिद्ध होगा कि, पुरुषमेधसे पुरुष अर्थात् एक ईश्वरकी मानसपूजा करना है और उस पुरुष-

मेधको करनेवाले देव हैं न की साधारण मनुष्य । यह देखनेके पश्चात्‌हि कई युरोपीयन कहते है कि, सब पुरुषमेध प्रकरण आलंकारिक है और इसका संबंध साक्षात परमेश्वरके साथहि है और नरबलिदानके साथ नही है ।

अध्याय ३२ मे '**सर्व-मेध**' का वर्णन आता है । इस अध्यायका स्वतंत्र पुस्तक स्वाध्याय-मंडलद्वारा प्रकाशित होचुका है । इस सर्वमेधका तात्पर्य सबमे जो मेध अर्थात पवित्र, अर्थात '**सर्वपूज्य**' परमेश्वर है, उसकी मानस-पूजा करना है । 'एकेश्वर उपासना' इस अ० ३२ मे कही है । उसकी तैयारीके लिये 'मनुष्यत्वका विकास' करना इन दो अध्यायोका उद्देश्य है ।

(२१) परमेश्वरका पुरुषमेध ।

परमेश्वरके पुरुषमेधका वर्णन शतपथमे निम्न प्रकार हैः—

> **पुरुषो ह नारायणोऽकामयत । अतिष्ठेयं सर्वाणि भूतान्यहमेवेदं सर्वं स्यामिति, स एतं पुरुषमेधं पंचरात्रं क्रतुमपश्यत्, तमाहरत्, तेनाऽयजत, तेनेष्ट्वाऽत्यतिष्ठत् सर्वाणि भूतानीदं सर्वमभवदतितिष्ठति सर्वाणि भूतानीदं सर्वं भवति, य एवं विद्वान् पुरुषमेधेन यजते, यो वैतदेवं वेद ॥ १ ॥** शत. ब्रा. १३।५।१।१

'नारायण पुरुष (परमात्मा) नें इच्छा की । कि मै सब भूतोंसे श्रेष्ठ बनूं और यह सब मैहि बनजाऊं, उस (परमात्मा) ने यह पंचरात्र यज्ञ देखा, उसको लाया, उसका अनुष्ठान किया उसके अनुष्ठानसे वह (परमात्मा) सब भूतोमे श्रेष्ठ बना, और यह सब वही बन गया; जो ऐसा जानता है और जो विद्वान पुरुषमेधका अनुष्ठान करता है, वह यह सब बनता है और वही सब भूतोंसे श्रेष्ठ बनाता है ।'

परमात्माके सर्वमेधका यह आलंकारिक वृत्तांत शतपथमे आया है । और सब विद्वान मनुष्योको परमेश्वरके अनुरूप पुरुषमेध करना चाहिए ऐसाभी उक्त विधानमे कहा है । परंतु यदि प्रत्येक विद्वानको पुरुषमेध करना हो,

और प्रत्येक पुरुषमेधमें १८४ मनुष्य मारे जाने हो, तों संभवहि नहीं कि प्रत्येकके लिये पुरुषमेध करनेका अवसर प्राप्त हो सके। यह यज्ञ सर्व लोकोको करना उचित है, इसी एक बातसे सिद्ध है, कि यह यज्ञ हिंसामय कर्म नही है। अस्तु अब परमेश्वरके पुरुषमेधका तात्पर्य देखिए। अ० ३१ के पहिले ५ मंत्रहि यहा देखेगेः—

परमात्माका पुरुषमेध।	मनुष्यका पुरुषमेध।
(१) (**सविता**)–परमेश्वर सबका उत्पादक, प्रेरक, और पोषक किवा ऐश्वर्यवर्धक है।	(१) मनुष्य सबको अच्छी उत्साहमय प्रेरणा करे, तथा उनका पोषण कराके उनको ऐश्वर्यके मार्गसे चलावे।
(२) (**प्रसुव यज्ञं**)—सत्कर्मकी प्रेरणा करो। **यज्ञ**—सत्कार, सगति, दान।	(२) सत्कर्मकी प्रेरणा करो। यज्ञ—सत्कार, सगति, दान (Honour, unity & charity)
(३) (**यज्ञपतिं भगाय प्रसुव**)–सत्कर्मकर्ताको ऐश्वर्य और उन्नतिके लिये प्रेरित करो।	(३) जो जो मनुष्य सत्कर्म करते हो, उनको उत्साह देकर, उनको ऐश्वर्य और उन्नतिके मार्गपर रहनेके लियेहि प्रेरणा दो।
(४) (**केत-पूः गंधर्वः नः केतं पुनातु**)–ज्ञानसे पवित्र वक्ता हमारे ज्ञानको पवित्र करे।	(४) स्वयं ज्ञानसे पवित्र बनना और दूसरोको ज्ञानके साथ पवित्र बनाना।
(५) (**वाचस्पतिः वाचं स्वदतु**)–वक्ता वाणीको स्वादिष्ट बनावे।	(५) वक्ता दूसरोके वाणीको पवित्र और मीठा बनावे।
(६) (**वरेण्य-भर्ग-ध्यानं**)–श्रेष्ठ तेजका चिंतन।	(६) मनुष्य सदा श्रेष्ठ गुणोंकाहि विचार करे। कभी दुर्गुणोका विचार-तक मनमे न लावे।

(७) (दुरित-निवारणं)—दुर्गुणोको दूर करना और (भद्र-स्वीकरणं)-अच्छे गुणोका स्वीकार करना।	(७) मनुष्य श्रेष्ठ गुणोका स्वीकार और दुर्गुणोंका त्याग करे। (सत्यका ग्रहण और असत्यका त्याग करनेके लिये सदा मनुष्यको तत्पर रहना चाहिए।)
(८) (वसोः विभक्तारं हवामहे)—वसुओंका विभाग करनेवालेकी प्रशंसा करना।	(८) सब धनोका लोकोंमे योग्य विभाग करना चाहिए । और जो ऐसा विभाग करेगा उसीकी प्रशंसा करना चाहिए।
(९) (नृ-चक्षसं हवामहे) मनुष्योको सुशिक्षण देनेवालेकी प्रशंसा।	(९) सब मनुष्योंको उत्तम शिक्षण देना चाहिए और जो उत्तम शिक्षण देगा उसीकी प्रशंसा करना चाहिए।
(१०) ज्ञानके लिये ज्ञानीको, शौर्यके लिये शूरको, जनताके लिये वैश्यको और कुशलताके लिये कारीगरको स्थापित करना।	(१०) ज्ञान, शौर्य, जनहित, और कौशल्य इनकी वृद्धिके लिये क्रमशः ज्ञानी, शूर, वैश्य (धनयुक्त), और कारीगरको प्रेरित करना।

पांच मंत्रोंका यह आशय है। इसको देखनेसे परमेश्वरने अपना पुरुषमेध किस प्रकार किया था, जिससे कि वह सबसे श्रेष्ठ बना, पता लग जायगा। तथा मनुष्यको अपना पुरुषमेध करनेका विधि भी अच्छी प्रकार ज्ञात हो सकता है। उक्त कोष्टकमें अ० ३० के प्रथम ५ मंत्रोंके आवश्यक शब्द दिये हैं, जिनसे परमेश्वरका नरमेध किस प्रकार हुआ था इसकी ठीकठीक कल्पना हो सकती है; इसलिये अब इस विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं। परमेश्वर महान है और वह अपनी विलक्षण शक्तिसे सब कार्य करता है। मनुष्यके पास उतनी शक्ति नहीं है; तथापि मानवी शक्तिका विकास कितना हो सकता है इसका ठीक प्रमाण न अबतक किसीने निकाला है और न कोई निकाल सकता है। 'मनुष्यत्वका विकास' बहुत होसकता है। मनुष्य-

त्वके विकासके विरोधको हटाना और अनुकूलताको बढाना चाहिए । तथा अपनी अपनी शक्तिके अनुकूल प्रत्येकको वही कार्य करने चाहिए कि जो परमात्माके द्वारा महान सृष्टिमे हो रहें हैं ।

(२२) ऋषिनामोंका विचार।

इस अ० ३० के मंत्रोके निम्न प्रकार ऋषिनाम दिखाई देते हैं।

मंत्र	ऋग्वेदमें ऋषिनाम	यजुर्वेदमें ऋषिनाम	यजु.सर्वानुक्रम सूत्रके अनुसार ऋषि नाम	शतपथके अनुसार ऋषि नाम	पं०ज्वाला-प्रसादजीके अनुसार०
१ देव सवितः प्रसुव	×	नारायण.	पुरुषो नारायणो बृहस्पति. इन्द्रो वा ।	पुरुषो नारायणः	पुरुषो नारायणः
२ तत्सवितुर्वरेण्यं	विश्वामित्र.	,,	पुरुषो नारायणः	,,	,,
३ विश्वानि देव सवि०	श्यावाश्वः	,,	श्यावाश्वः	,,	,,
४ विभक्तार हवामहे	मेधातिथिः	मेधातिथि.	मेधातिथिः	,,	,,
५ ब्रह्मणे ब्राह्मणं इ० इ०	×	नारायण.,	पुरुषो नारायणः	,,	,,

शतपथमे अध्यायका द्रष्टृत्व पुरुषनारायणके पास दिया है। परतु सर्वानुक्रम सूत्रमें ऋषियोंकी खोज की गई प्रतीत होती है । सब वेदोंका यद्यपि एकहि स्वयंभु ऋषि है तथापि उसके स्फुरणसे अन्य ऋषियोंके पास भी द्रष्टृत्व आताही है । जहां जहां मंत्र आया हो वहां वहां प्राचीन पुस्तकोंमे कौनसे ऋषियोंके नाम दिये हैं, अवश्य देखने चाहिए । जिनकी खोज होनेसे एक अपूर्व सिद्धातका प्रतिपादन होनेवाला है इसलिये पाठकोसे प्रार्थना है कि वे इसका विचार करें।

(२३) देवताओंका और उनके बलियोंका विचार।

प्रत्येक देवताके उद्देशसे एक एक बलि देनेकी कल्पना शतपथ ब्राह्मणसे सूत्रो और भाष्योंमे प्रचलित हुई थी। प्रथम आरंभमे इस कल्पनाको श्री० स्वा० दयानंद सरस्वतीजीने दूर किया, इसलिये इनकी दिव्य दृष्टी नि सदेह सिद्ध होती है। नही तो सूत्रो और भाष्योंके घने पडदेको फाडकर विस्तृत दृष्टीसे मंत्रो देखना इनके पहिले किसीको भी साध्य नही हुआ था। मूल वेदके मंत्र मूलवेदके आशयके साथ पढनेको इन्हीने प्रथम प्रारंभ किया, इसलिये, किसीका शब्दार्थके विषयमे कोई भी मतभेद हो, परंतु इस शुद्ध वैदिक प्रणालीकी जागृतिका सपूर्ण श्रेय उक्त स्वामिजीकोहि है। इसमे भिन्न मत नही हो सकता। अब देवताओंके उद्देशसे बलि देना मन्त्रोमे है, अथवा कुछ विशेष अर्थ मंत्र रखते हैं, इराका विचार निम्न कोष्टकको देखकर पाठक स्वयं कर सकते हैं। यहा प्रत्येक शब्दके मूल यौगिक अर्थ और साथ साथ भाष्यकारोंके रूढ अर्थ भी रखे हैं, जिससे स्वयं विदित हो सकता है कि रूढ अर्थ लेनेसे अर्थकी कितनी हानी हुई है —

यजु. अ. ३० के मूल मंत्र।	शब्दोके धातुजन्य मूल यौगिक अर्थ।	भाष्यकारोके रूढीके अर्थ
१ ब्रह्मणे ब्राह्मणं आलभते।	ज्ञानके लिये ज्ञानीको प्राप्त करता है।	ब्रह्मदेवताके लिये ब्राह्मण जातिवालेका बलि देता है।
२ क्षत्राय	विनाशसे रक्षण करनेके लिये	क्षत्रदेवताके लिये
राजन्यं ”	क्षत्रियवीरको प्राप्त करता है।	क्षत्रियका बलि देता है।
३ मरुद्भ्यः वैश्यं ”	मरणधर्मी मनुष्योके लिये व्यापार करनेवालेको ”	मरुत् देवताओके लिये वैश्यका बलि ”

४ तपसे शूद्रं ”	कष्टके कर्मोके लिये शूद्रको प्राप्त करता है ।	तपदेवताके निमित्त शूद्रका बलि ”
१० अतिक्रुष्टाय मागध ”	बडी वक्तृताके लिये प्रमाणपूर्वक बोलनेवा- लेको ”	अतिक्रुष्ट देवताके लिये मागधजातिके मनुष्यका बलि ”
१३ धर्माय सभाचर ”	मर्यादाके नियमोको जाननेके लिये सभासदको प्राप्त करो	धर्मदेवताके निमित्त सभासदका बलि ”
१४ नरिष्ठायै भीमलं ”	सरक्षणके लिये शूरको ”	नरिष्ठा देवीके निमित्त उग्र रूपवाले मनुष्यका बलि ”
१५ हसाय कारि ”	आनंदके लिये कारीगरको ”	हस देवताके निमित्त सतत उद्योग करनेवालेका बलि ”
१८ प्र-मदे कु-मारी-पुत्रं ”	विशेप शौर्यके लिये वीरस्त्रीके पुत्रको ”	प्रमददेवताके लिये अविवाहित लडकीके पुत्रका बलि ”
२० धैर्याय तक्षाणं ”	धैर्यके लिये कुशलको ”	धैर्यदेवताके लिये सुतार (तर्खाण) का बलि ”
२२ मायायै कर्मार ”	कुशलताके लिये कारीगरको ”	मायादेवीके निमित्त लोहारका बलि ”
२३ रूपाय मणिकारं ”	सौदर्यके लिये जौंहरीको ”	रूपदेवताके लिये रत्नोका व्यवहार करने- वालेका बलि ”

२४ शुभे वपं ”	हित होनेके लिये किसानको प्राप्त करो	शुभनामक देवताके निमित्त बीज बोनेवालेका बलि ”
३५ प्रयुग्भ्यः उन्-मत्तं ”	प्रयोगके लिये गर्वहीनको ”	प्रयुगदेवोके निमित्त पागलका बलि ”
३७ अयेभ्यः कित-व ”	हलचलके लिये ज्ञान-सेवीको ”	अयदेवोके लिये जुवेबाजका बलि ”
४१ सधये जारं ”	सुलह करनेके लिये वयोवृद्ध मनुष्यको ”	सधिदेवताके लिये व्यभिचारीका बलि ”
४७ स-ज्ञानाय स्मर-कारी ”	उत्तम ज्ञानके लिये स्मरणपूर्वक कर्म करनेवा-लेको ”	सज्ञानदेवताके निमित्त कामोत्तेजना करनेवालेका बलि ”
५६ पवित्राय भिषज ”	शुद्धताके लिये वैद्यको प्राप्त करो	पवित्र देवताके लिये वैद्यका बलि ”
५७ प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्श ”	विशेष ज्ञानके लिये ज्योतिषीको ”	प्रज्ञानदेवताके लिये ज्योतिषीका बलि ”
६० मर्यादायै प्रश्नविनाक ”	फैसलेके लिये पंचको ”	मर्यादादेवीके लिये प्रश्नके उत्तरदाताका बलि ”
६६ इरायै कीनाशं ”	अन्नके लिये किसानको प्राप्त करो	इरादेवीके लिये किसानका बलि ”
६९ श्रेयसे वित्त-धं ”	कल्याणके लिये धनसंग्रहकर्ताको ”	श्रेयदेवताके निमित्त साहुकारका बलि ”

७४ वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं ”	श्रेष्ठ सुखके लिये परोसनेवालेको ”	उत्तम स्वर्गके निमित्त परोसनेवालेका बलि
८१ ऋतये स्तेनहृदयं ”	युद्धके समयके लिये मनकी बात गुप्त रखनेवालेको ”	ऋतिदेवीके लिये चोरी करनेवाले नापित-का बलि ”
९३ योगाय योक्तारं ”	योगाभ्यासके लिये योगीको प्राप्त करो	योगदेवके लिये योगीका बलि ”
९५ क्षेमाय विमोक्तारं	कल्याणके लिये स्वातंत्र्य देनेवालेको ”	क्षेमदेवताके निमित्त विपदुद्धार कर्ताका बलि ”
१२५ तुलायै वणिजं ”	तोलके लिये दुकानदारको ”	तुलादेवीके लिये बनियाका बलि ”
१२८ भूत्यै जागरणं ”	उन्नतिके लिये जागृतिको प्राप्त करो	भूतिदेवीके निमित्त जिसको नीद नही आती उसका वलि ”
१२९ अभूत्यै स्वप्नं ”	अवनतिके लिये सुस्तिको ”	अभूतिदेवीके निमित्त सुस्तीसे सोनेवालेका बलि ”
१३० आर्त्यै जनवादिनं ”	आपत्तिके निवारणकेलिये लोकोंके हितकी बात कर-नेवालेको प्राप्त करो	आर्तिदेवीके लिये स्पष्टवादीका बलि ”
१५१ वनाय वन-पं ”	वनके लिये वनसरक्षकको प्राप्त करो	वनदेवताके लिये वनपालका बलि ”
१५२ अरण्याय दाव-पं ”	अरण्यके लिये अग्निसे बचाव करनेवालेको ”	अरण्यदेवताके लिये अग्निसे बचानेवालेका बलि ”

१५६ महसे ग्राम-ण्यं ”	महत्त्वके लिये ग्रामके नेताको ”	महसदेवके लिये ग्रामका मार्ग बतानेवालेका बलि ”
१६१ नृत्ताय तूण–वध्मं ”	नाचके लिये तबला बजानेवालेको ”	नृत्यदेवताके लिये तबला बजानेवालेका बलि ”

अस्तु। इस प्रकार थोडासा नमुना बताया है, जिससे पाठक स्वय जान सकते हैं, कि देवताके उद्देशसे किस प्रकार बलिदानकी प्रथा इन लोकोनें चलाई थी और वास्तवमें इनके मूल अर्थ कितने अच्छे थे। बुद्धिसे थोडाभी काम लेते, तो उसीसमय उनको अपनी भूलका पता लग सकता था। परतु अध-विश्वास इतना प्रबल बना था, कि उसके सन्मुख अपनी सदसद्विवेक बुद्धिका बलि देनाहि इन कर्मकांडियोको पसद था ! ! !

(२४) पं. ज्वालाप्रसादजीके मंतव्यकी समीक्षा।

पं. ज्वालाप्रसादजी अपने यजुर्वेदके अनुवादमे पृ. ११६९ पर लिखते हैं:–‘ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रादि जाति और सब प्रकारके दूसरे व्यवसाय करनेवाले पुरुष प्राय. सबका वर्णन इस अध्यायमें है। पृथक् पृथक् जाति तथा उनके सतानोका वर्णन करनेसे इस स्थल यह भली भाति प्रकट होता है कि जाति जन्मसे है, कर्मसे नही; इसमें जाति और कर्म सभीका उल्लेख किया है जो देवतारूप हैं जिस प्रकारके पुरुषकी जैसी निष्ठा होती है वह भी दिखाया है, जैसे ब्राह्मणकी प्रीति ब्रह्ममें इत्यादि० ॥ ५ ॥ यह यज्ञ सर्वश्रेष्ठ है पुरुषमेधमे किसीकी हिंसा नही है, जिन्होने हिंसा समझी हो वह भ्रात हैं मन लगाकर यह प्रसग पाठ करे।’

पं० ज्वालाप्रसादजीका कथन यह है कि इस अध्यायमें जन्मसे जाति कही है न की कर्मसे। भला किस मंत्रमें ऐसा कहा है ? ब्रह्मशब्दसे ज्ञान गुण और ज्ञानोपदेशरूपी कर्म विवक्षित है। क्षत्रशब्दसे शौर्य गुण और प्रजारक्षणरूप कर्म विवक्षित है। इन गुणो और कर्मोंसे युक्त पुरुषोकाहि नाम क्रमश ब्राह्मण और क्षत्रिय है। यदि देवताओके उद्देशसे सब जन्मसिद्ध जातियोकेहि बलि देना

अपेक्षित होता, तो पं. ज्वालाप्रसादजी स्वयं अपने कथनमें 'दूसरे व्यवसाय करनेवाले पुरुष' ऐसा कभी न कहते । परंतु वे बिचारे कर क्या सकते हैं ? क्योंकि सब १८४ शब्द जातिपर लगहि नहीं सकते, इसलिये 'दूसरे व्यवसाय करनेवाले पुरुष' ऐसा कहनाहि आवश्यक हुआ। "तस्कर, सभाचर, भीमल, कुमारीपुत्र, उन्मत्त, कितव, जार, प्रश्नविवाक, वित्त-ध, स्तेनहृदय, योक्ता, विमोक्ता, जागरण, स्वप्न, जनवादी, वनप, दावप, तूणवध्म" आदि शब्द नि संदेह जातिवाचक नही हैं । परंतु गुणवाचक और कर्मवाचकहि हैं, इसीलिये स्वयं पं० जी कहते हैं कि 'दूसरे व्यवसाय करनेवाले पुरुष' !!! यदि आप सब बलिवाचक शब्दोके लिये 'उस उस व्यवसायको करनेवाले पुरुष' ऐसा सामान्यत कहते तो आपका कथन सबको माननेयोग्य बन जाता । परंतु इतनी बुरी अवस्था प्राप्त होनेपर भी दुरभिमान नहीं हटता ! उन्नतिरूप देवीके सन्मुख इसी दुरभिमानका बलि पहिले दीजिए, और पश्चात् वेद पढ लीजिए, तभी आपको वेदका गुह्य आशय समझेगा ।

'ब्राह्मणकी प्रीति ब्रह्ममें' यही नियम सर्वत्र है । ऐसा पंडितजीका कथन है । 'लुहारकी प्रीति मायादेवीमें, उन्मत्तकी प्रीति प्रयुगमें, जारकी प्रीति सधिमे, कामोत्तेजककी प्रीति सज्ञानमें, परोसनेवालेकी प्रीति स्वर्गमें, नीद न आनेवालेकी प्रीति भूतीदेवीमें, स्पष्टवादीकी प्रीति आर्तिदेवीमें,' इस प्रकारके कथनसे पं० ज्वालाप्रसादजीका क्या आशय है पता नही लगता। यदि आप उक्त मंत्र ठीक नही जानते, तो कोई आपका दोष नही हो सकता, परंतु इसप्रकार मनमानी बात लिखनाहि विद्वानोंके सामने दोषरूप समझा जायगा ।

'पुरुषमेध सबसे श्रेष्ठ है' यह पंडितजीका कथन सबको मानने योग्य है । परंतु जो वर्णन यजु. अ. ३० के प्रसंगमे पं० जीने किया है उसको पढकर किसी मनुष्यके मनमें 'पुरुषमेध सबसे श्रेष्ठ है' यह बात स्थिर नहीं हो सकती । शोक है कि आगेपीछेका कुछ भी विचार न करतेहुए मनमानी बातें ठोक देनेका अधिकार अबतक इन लोकोंने अपने पास रखा हुआ है । यदि आप सचमुच समझते हैं, कि पुरुषमेध सब यज्ञोमें श्रेष्ठ है, तो आप अपनी कीहुई व्याख्यासे तो इसकी श्रेष्ठता सिद्ध कीजिए। उपयुक्तता तो आपकी व्याख्यासे सिद्धहि नही होसकती ।

'पुरुषमेधमें किसीकी हिंसा नहीं है, जिन्होने समझी हो वह भ्रांत हैं।' यह पं० जीका कथन ठीक है। न हमने हिसा समझी थी और न वैसा कभी हमारा ख्याल था। पं० जी यह नही कह सकते हैं कि अश्वमेध, अजमेधमेभी हिंसा नही है, परंतु आपने इतनी कृपा तो अवश्य की है और कहा है कि 'पुरुषमेधमें हिंसा नही है।' यह सब मनुष्यजातीपर आपका उपकार है। इसीप्रकार आप अश्वमेध और अजमेधकी हिसा हटाकर उन चतुष्पादोपर दया तो कीजिए। अस्तु इसका विचार मै अश्वमेधादि प्रकरणके समय करूंगा यहा नरमेधकाहि विचार करना है। पं. जीने ११६९ पृष्ठपर लिखा है कि 'ग्यारह यूपोमे १८४ पुरुषोको नियुक्त करना चाहिए.' । क्या पं० जी कह सकते हैं, इसका क्या तात्पर्य है। यूप एक लकडीका खंबा होता है, उसको पं० जीके कथनानुसार कितना भी 'सुशोभित' किया, तोभी उसका खंब-पन नष्ट नही हो सकता। पं० जीनें कहा है कि 'पहिले यूपमें ४८, दूसरे यूपमे ३७ और शेष ९ खम्बोपर ९९ पुरुष नियुक्त होगे, (देखीए पृ ११६९)। मनुष्योको इस प्रकार पशुवत खंबेके साथ बाधना तो आपके नरमेधमे इष्ट है? यदि न होता तो आप भी क्यों लिखते? जो मनुष्य रस्सेसे इसप्रकार ११ खंबोको अपने आपको वंधवा लेगे, उनकी मनुष्यता सिद्ध करना भी वडा कठिन कार्य होगा। फिर इस कर्मकी सर्वश्रेष्ठता सिद्ध करना तो बडा दूर रहेगा।

आगे जाकर पं० जी पृ. ११८२ पर लिखते हैं 'इन सबको सत्कारपूर्वक नियुक्त करके उपरांत........ इन मंत्रोंसे..... .. प्रत्येक देवताके उद्देशसे प्रोक्षणादि करै, ब्राह्मणसे लेकर पर्यग्निकरणके उपरान्त...... ..प्रत्येक पुरुषको निजदेवताके उद्देश्यसे त्याग देना......।' प्रत्येक देवताके उद्देशसे त्यागनेका मतलब क्या है? पर्यग्निकरण विधितक खंबोके साथ इतने विद्वान और शूरोको नियुक्त करनेका तात्पर्य क्या है? विद्वानोको सत्कारपूर्वक खम्बोके साथ किस प्रकार बांधा जा सकता है? यदि नियुक्त करनेका तात्पर्य रस्सेसे बाधना नहीं है तो बीचमें ११ खंबोकी आवश्यकता क्या है? १८४ पुरुष आकर यज्ञमंडपमे बैठकपर आरामसे बैठ सकते हैं। (१) इनका सन्मानभी करना और (२) इनको खंबोके साथ जोड भी देना, इन दो बातोंकी संगति किस प्रकार करनी है? क्या पं० जी इसका अधिक विवरण कर सकते हैं?

(२५) स्पर्शास्पर्शका नरमेधमें अभाव ।

पं० ज्वालाप्रसादजीका सबका सब कहना मानना उचित हो या न हो, इसका विचार सब विद्वान पाठक कर सकते हैं। परतु जाते जाते पं० जीके कथनसेहि एक बात सिद्ध होती है कि छूतछातका आजकलका मुआमला यहा पुरुषमेधमे कमसेकम अभीष्ट नही है । क्योंकि 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, तस्कर, व्यभिचारी, जुवेबाज, गोपाल, अजपाल, वस्त्र रगानेवाली रंगरेजा स्त्री, अनुचर, तर्खाण, लुहार, चम्हार, धीवर, दास, भील, निपाद, नर्तक, आदि सब १८४ पुरुप' यज्ञमडपमे लाने हैं, और हवनकुडके पासवाले यूपोके साथ नियुक्त करना है । यदि छूतछातकी कुछभी कल्पना मानी जाय, तो यह पुरुषमेध होही नहीं सकता, आजकल चम्हारको यज्ञमंडपमे वेदीके पास लाना सर्वथा असभव है । छूतछातकी प्रचलित कल्पना माननेसे यह 'सबसे श्रेष्ठ यज्ञ' कियाही नही जा सकता । अव पं० जीको चाहिए कि या तो वे छूतछातको छोडे या पुरुषमेधको अव्यवहार्य कहें ! !

पं० ज्वालाप्रसादजीने जो इस अ० ३० का अनुवाद किया है सबका सब गलत है । यहां सब बातोका विचार करनेके लिये स्थान नही है । पूर्वोक्त रूढ अर्थ बतानेवाले कोष्टकमे जो रूढ अर्थ दिये हैं वे सव पंडितजीके भावके साथ मिलतेहि हैं। उनके अतमे 'बलि' शब्दके स्थानपर 'त्याग देना' शब्द रखनेसे पंडितजीका अर्थ होता है । पाठक वहाहि विचार करें कि इनके रूढीके अर्थ ठीक हैं या यौगिक अर्थ ठीक हैं ।

(२६) रूढ अर्थोंसे और एक आपत्ति ।

शब्दोके रूढ अर्थ लेनेसे एक बडी भारी आपत्ति आ सकती है । वह यह कि, चोर, व्यभिचारी, व्यभिचारिणी, क्लीब, कुष्टरोगी, निद्रा न आनेवाला मनुष्य, सदा सोनेवाला पुरुष, गायका वध करनेवाला मनुष्य, जूवेबाज, धूर्त, आदि सबकी आवश्यकता 'यूपोंके साथ सत्कारपूर्वक नियुक्त करनेके लिये' है । जैसा कि पं० जीने पृ. ११६९ से ११८३ तक लिखा है । यदि किसी समाजमें ये दुष्ट बदमाश डाकू न हो तो उस उच्च और शुद्ध समाजके मनुष्य यह 'सबसे श्रेष्ठ पुरुषमेध' करहि नही सकते । वे शुद्ध और उच्च

समाजके श्रेष्ठ पुरुष नरमेध करनेके लिये व्यभिचारीको कहांसे लावें, यदि गायका वध करनेवाला कोई न हो तो नरमेध किस प्रकार किया जाय? पं० जीके अर्थसे नरमेध करनेके लिये इन दुराचारी दुष्ट मनुष्योकी आवश्यकता है, तथा उवट-महीधर-भाष्यकी इसके लिये पुष्टिभी है!!! परंतु सोचना यह है, कि इन दुष्ट मनुष्योका सत्कार किस प्रकार किया जा सकता है, तथा जो इन दुराचारियोका सत्कार करेंगे उनकी धर्मबुद्धि और नीति किस प्रकारकी होगी?

धर्मका उद्देश इन दुष्ट मनुष्योको समाजमें रखना है, या दूर करना है। समाजमें इन धूर्तोंके कारण उपद्रव होता है या सुख होता है। यदि धर्मसे मनुष्योका सुधार होना है, तो उत्तम धार्मिक समाजमें, जहा कि ये दुराचारी न होंगे, वहा नरमेध करनेकी आवश्यकता है या नही? इस प्रकारकी आपत्तिया इन रूढ अर्थोके कारण उत्पन्न होती हैं। वास्तवमें देखा जाय तो बहुतसे अर्थ, इनके किये हुए, बडे अशुद्ध हैं, तथा जिस प्रकारके विधिको ये लोक नरमेध समजते हैं, वह वास्तवमे, वैदिक नरमेध हैहि नही। वास्तविक नरमेधका स्वरूप इस अध्यायके स्पष्टीकरणमे दिया है, और सदा सर्वदा प्रत्येक समाजके लिये इस प्रकारके वैदिक नरमेधकी अत्यत आवश्यकता है। मनुष्यत्वका विकास करनाहि नरमेधका मुख्य कर्तव्य है, उस विकासकी सिद्धिके लिये समाज-शिक्षा और समाज-शुद्धि करना चाहिए। यही नरमेध वास्तव स्वरूपमें है।

(२७) नरमेधका वैदिक विधि। समाज-शिक्षा-विभाग।

पुरुषमेधमे 'पुरुष' शब्दका अर्थ 'पुरि+वसति' (पुरि–पादः। पुरि–शय। पुर्–उष्। पुर्–वस्) पुरि अर्थात नगरीमे वसनेवाला नागरिक (city–gen सिटि-जन) मनुष्य ऐसा है। मेधका अर्थ बुद्धिका विकास। नागरिक मनुष्योकी बुद्धिका विकास करना नरमेधका उद्दिष्ट है। उत्तम शिक्षा-द्वारा नागरिक जनोकी बुद्धि विकसित हो सकती है इसलिये (ब्रह्मणे) ज्ञान प्रचारके लिये (ब्राह्मणं) ज्ञानीको (आ-लभते) नियुक्त करता है। "राजा, मनुष्योका समाज अथवा राष्ट्र" ही यहा कर्ता है। राष्ट्रीयशिक्षाविभाग राष्ट्रके ज्ञानी मनुष्योंके आधीन रहना चाहिए। इसीप्रकार शौर्यविभागपर क्षत्रियोको

नियुक्त करना चाहिए; क्षत्रिय लोक नगरोंमे, गांवोमें और सब राष्ट्रमें दुष्टोको दण्ड करके सुष्टोंका पालन करें, चोर, डाकु, व्यभिचारी आदि दुष्टोको यथायोग्य दण्ड करके उनको सुधारनेका यत्न करें, तथा उनकी दुष्टतासे दूसरे सज्जनोको उपद्रव न पहुंचे ऐसी व्यवस्था करनेमे सदा तत्पर रहें। ज्ञानियोका काम ज्ञानका प्रचार करके तद्वारा अज्ञान और मिथ्याज्ञानका नाश करनेका मुख्य है, तथा वीरोका काम दुष्टोका दमन करके सज्जनोको स्वातंत्र्य देनेका मुख्य है। उक्त कार्यके लिये वैश्य आगे आते हैं, और धनोसे सहाय्यता देते हैं, तथा शूद्र भी अपनी शारीरिक मेहेनतसे तथा कारीगरी अर्थात् कुशलतासे सहाय्य करते हैं। इसप्रकार चारो वर्णोंने मिलकर अपनी स्वसंमत (self-determined) शिक्षा-विभागकी व्यवस्था अपने अपने राष्ट्रमें करना नरमेधका प्रयोजन है। जब स्पष्टीकरणके अर्थोंको पाठक स्वयं देखेगे और सोचेगे, उस समय उनकी भी इस विषयमें नि.सदेह अनुकूल संमति होगी इसमे मुझे कोई सदेह नही। इसीप्रकार संरक्षण-विभाग, शुद्धिविभाग आदि विभागोके विषयमें समझा जा सकता है। इसलिये यहां इनके विषयमें कुछभी अधिक लिखनेकी आवश्यकता नही है।

(२८) वैदिक परंपरा टूटनेके कारण कठिनता।

मूल वैदिक परंपरा आज विद्यमान नही है। उनपर अनेक आघात होनेके कारण वह टूटगयी है। आज केवल हमारे पास वेदमंत्र हैं। परंतु उनका मूल शुद्ध अर्थ बतानेवाली कोई पुस्तक नही है। परपरासेहि शब्दोंके अर्थ ठीक विदित हो सकते हैं। जैसा देखीए। '**जावा**' में अबतक स्वतंत्र हिंदुराज्य विद्यमान है, और वहा चातुर्वर्ण्यव्यवस्था भी है तथा स्मृतियोके अनुसार राज्यशासन चलता है। निगम और आगमोको वहां प्रमाण माना जाता है। वहा राज्याधिकारियोको '**यक्ष**' कहते हैं। तथा विशेष अधिकारियोके नाम '**यक्ष, परमेश्वरि, मंत्री, सेनापति**' इस प्रकार हुआ करते हैं। इस द्वीपमे कई प्राचीन ग्रंथ भी उपलब्ध हैं। कई विद्वान पुरुषोको उचित है, कि वे इस द्वीपमे जाकर निवास करें; और वहाके सब रीति, रिवाज, ग्रंथसग्रह, राज्यव्यवस्था आदिका अभ्यास करें। संभव है कि कई शब्दोंके अर्थोका इस संशोधनसे पता लग सकेगा। केवल कोशोंसे '**यक्ष**'

शब्दका अर्थ 'प्राताधिकारी' ऐसा नही प्रतीत होसकता, उसीप्रकार **'परमेश्वरि'** शब्द भी विलक्षण अर्थमें उस राष्ट्रतंत्रमें उपयुक्त होता है। इस अध्याय ३० के शब्द राज्यशासन-प्रणालीका बोध करानेवाले है, राज्यशासनमें लोक-शिक्षा आदि सब विभाग आतेहि हैं। परंतु परंपरा टूटनेके कारण उनके अर्थोका हल करना बडा कठिन हुआ है । जब सब वेदोका पूरा आदोलन होगा तवही वैदिक मंत्रोके सच्चे अर्थोका पूर्ण निश्चय होना सभव है।

(२९) स्वाध्यायशील पाठकोंसे प्रार्थना।

इस अध्याय ३० की ओर जबजब मै देखता था तबतब इसको समझनेकी बडी कठिनता प्रतीत होती थी। और आरभमे मुझे कोई आशा नही थी, कि मेरेसे इसप्रकार इसका विवरण हो सकेगा। परतु जैसा जैसा परिशीलन होता गया, और खोज होती गयी, परमेश्वरकी कृपासे कठिनताओका हल होने लगा, और अब यह अध्याय कुछ न कुछ ज्ञेय कोटीमें आगया है।

मै इस समय यह नहीं कहसकता कि, जोजो शब्दोके अर्थ मैनें यहा दिये हैं, सबके सब बिलकुल ठीक होगे। तथा जिन मंत्रोको जिस विभागमे रखा है, बिलकुल ठीक है। नही नही। ऐसा इस समय कहना बडे साहसका कार्य होगा। अभी इसका बडा विचार होना चाहिए, और वेदके अन्य स्थानोके विधानोके साथ इनकी तुलना करके इनके अर्थका निश्चय करना चाहिए।

यहां मैनें साधन एकत्रित किये हैं। जिनको सोच सोचकर आगेका काम स्वाध्यायशील विद्वान पाठकोको करना चाहिए। विशेपतया प्रत्येक मंत्रके गूढ आशयका विचार होना चाहिए, तथा किस मंत्रको किस विभागमें रखनेसे उसका आशय अधिक स्पष्ट हो सकता है इसका भी विचार करना चाहिए। सभव है कि जितने विभाग मैने किये हैं उनसे अधिक विभाग करने पडेगे अथवा कदाचित न्यूनभी करनेसे कार्यभाग होगा। आशा है कि पाठक जिन जिनके हाथमें यह पुस्तक जायगा, अपनी समति मुझे विदित करेंगे, जिससे कि मै द्वितीय संस्करणमे इसको अधिक शुद्ध बना सकूंगा। बहुत सज्जनोकी

सहायतासेहि यह कार्य ठीक हो सकता है । आशा है कि पाठक इस कार्यमें सहायता देगे ।

तथा शतपथादि ब्राह्मणग्रंथ और सूत्रग्रंथोके विषयमे जो जो समति इस भूमिकामे लिखी है उसकी जिम्मेवारी इस समय केवल मेरे सिर पर हि है । जो जो विद्वान पुरुष विरुद्ध संमति रखते होगे, उनको उचित है, कि वे अपने विचार लिखकर मेरे पास भेज दें, ताकि मै उनके विचारोको देखकर अपनी समतिको ठीक कर सकूं ।

इस पुस्तकके उत्तरार्धके अतमे ब्राह्मणग्रंथोके नरमेधके परिशिष्ट दिये हैं । जो विद्वान ब्राह्मणग्रथोको 'यौगिक गुह्यार्थ-वादी' मानते हैं, उनको उचित है कि वे उनके गुह्य आशयका प्रकाश करे । केवल आग्रहसे किसी अर्थका प्रकाश करना स्वाध्यायमंडलका कार्य नही है । जहातक युक्ति और आतरिक प्रमाण मिलते हैं, वहांतक उनकी खोज करना और उन प्रमाणोसे जो अर्थ सिद्ध होगा उसकोहि मानना और प्रसिद्ध करना स्वा० मंडलका कार्य है । आशा है कि विद्वान पाठक इस महान कार्यमे योग्य सहायता करेंगे ।

औंध (जि. सातारा.)
१ चैत्र सवत् १९७६

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
स्वाध्याय-मडल,

ॐ

यजुर्वेदका स्वाध्याय

अ० ३०।

पुरुष-मेध-प्रकरण-पूर्वार्ध।

"मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन।"

वसु-विभाग।

का

विस्तृत स्पष्टीकरण।

॥ ओ ३ म् ॥

यजुर्वेदका स्वाध्याय ।

अध्याय ३०

पुरुष-मेध-प्रकरणम् ॥१॥

(१) यज्ञ-प्रेरणं, यज्ञ-पालनं, ज्ञान-पावनं, वाङ्माधुर्यञ्च ।

ॐ देव॑ सवितः॒ प्रसु॑व य॒ज्ञं प्रसु॑व य॒ज्ञ-प॑तिं
भगा॑य ॥ दि॒व्यो ग॑न्ध॒र्वः कै॑त॒-पूः केतं॑ नः
पुनातु ॥ वा॒चस्पति॒र्वाचं॑ नः स्वदतु ॥ १ ॥

{ १ } [(१) सत्कर्मकी प्रेरणा, सत्कर्मकी रक्षा, ज्ञानसे पवित्रता और वाणीका माधुर्य] । अर्थ—हे (सवितः देव) उत्पादक ईश्वर ! (भगाय) ऐश्वर्यके लिये (यज्ञं) सत्कर्मकी (प्रसुव) प्रेरणा करो तथा (यज्ञ-पतिं) यज्ञके पालकको (प्रसुव) प्रेरणा करो । (दिव्यः) दैवी गुणोंसे युक्त (गं-धर्वः) वाणीका पोषक और (केत-पूः) ज्ञानसे पवित्र करनेवाला (नः) हम सबके (केत) ज्ञानको (पुनातु) पवित्र करे । तथा (वाचस्पतिः) वाणीका स्वामी (नः वाचं) हम सबकी वाणीको (स्वदतु-स्वादयतु) स्वादसे युक्त अर्थात् मीठी बनावे ॥ भावार्थ—परमेश्वर सबको सत्कर्म करनेकी तथा सत्कर्मका संरक्षण करनेकी बुद्धि देवे । अपने उत्तम ज्ञानसे पवित्रता करनेवाला ज्ञानी हम सबके ज्ञानकी पवित्रता करे । तथा उत्तम वक्ता हम सबके वाणीको मधुर बनावे । जिससे हम सबकी उन्नति हो सके ॥

(२) ईशतेजसो ध्यानम्।

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ २ ॥

(३) दुरित-निवारणं, भद्र-संगमनञ्च।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ॥
यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ ३ ॥

(४) वसु-विभाग-प्रशंसा।

विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः ॥
सवितारं नृ-चक्षसम् ॥ ४ ॥

{२} [(२) ईश्वरके तेजका ध्यान] अर्थ—(सवितुः देवस्य) उत्पादक ईश्वरके (तत्) उस (वरेण्यं) श्रेष्ठ (भर्गः) तेजका (धीमहि) हम सब ध्यान करते हैं। (यः) जो (नः) हम सबकी (धियः) बुद्धियोंको (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे ॥ भावार्थ—परमेश्वरके उत्तम तेजका हम सब ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियोंको विशेष प्रेरणा अथवा चेतना देता है ॥

{३} [(३) बुराइयोंको दूर करके भलाइयोको पास करना।] अर्थ—हे (सवितः देव) उत्पादक ईश्वर! (विश्वानि दुरितानि) सब बुराइयोंको (परा-सुव) दूर करो, और (यत् भद्रं) जो भलाई है (तत्) उसको (नः) हम सबके पास (आ-सुव) ले आओ ॥ भावार्थ—सब बुराइयोंको दूर करने तथा सब भलाइयोंको पास करनेकेलिये सबका प्रयत्न होना चाहिए; और ऐसा करनेके लिये ही ईश्वरकी सहायताकी प्रार्थना करनी चाहिए ॥

{४} [(४) धन-विभागकी प्रशंसा।] अर्थ—(वसोः)

(५) वसुविभागः।

ब्रह्म॑णे ब्राह्म॒णं क्ष॒त्राय॑ राज॒न्यं॑ म॒रुद्भ्यो॒
वैश्यं॒ तप॑से शू॒द्रं तम॑से॒ तस्क॑रं नार॒काय॑
वीर॒हणं॑ पा॒प्मने॑ क्ली॒बमा॑क्र॒याया॑ अयो॒गूं
कामा॑य पूँश्च॒लूमति॑क्रुष्टाय माग॒धम् ॥ ५ ॥

निवासके कारक और (चित्रस्य) विलक्षण (राधसः) सिद्धिके साधनको (वि भक्तारं) विभक्त करनेवाले, (नृ-चक्षसं) मनुष्योंके मार्गदर्शक और (सवितार) उत्पादक अथवा प्रेरककी (हवामहे) हम सब प्रशंसा करते है ॥ भावार्थ—उत्तम स्वास्थ्यके सब उत्कृष्ट साधनोंका उत्तम विभाग जिसने किया है, जो सब मनुष्योंको सच्चा उपदेश करता है और जो सबको सत्कर्ममें प्रेरणा करता है; उसकी प्रशंसा करते हैं ॥

{ ५ } [(५) धनका विभाग।] *

---

* इनका अर्थ अध्याय समाप्तिके पश्चात् जो स्पष्टीकरण दिया है, उसमे देखिए तथा यहा [ ] इस प्रकारके कोष्टकमे जो अक दिये है वे क्रम अंक समझने चाहिए, तथा ( ) प्रकारके कोष्टकमे जो अक दिये है वे स्पष्टी करणके विभागके अक समझने चाहिए। जैसाः—[५] का अर्थ मन्त्रोके क्रमानुसार यह मंत्र पाचवा है तथा (४।२) का अर्थ यह है कि, शूद्रविभागमे यह दूसरा मन्त्र है । स्पष्टीकरणमे (१) ब्राह्मण, (२) क्षत्रिय, (३) वैश्य, (४) शूद्र, (५) सामान्य, (६) प्राजापत्य, (७) दण्ड, ऐसे सात विभाग करके उन सात विभागोमे १८४ मंत्रोको विभक्त किया है। ( ) इस प्रकारके कोष्टकमे पहिला अंक इस मुख्य विभागका दर्शक तथा दूसरा अक वहाके मन्त्रके अनुक्रमका होता है। तथा { } इस प्रकारके कोष्टकमे जो अक रखे है, वे मन्त्रोके अक समझने चाहिए। यहा ये तीन प्रकारके कोष्टक इन तीन उद्देशोंसे रखे है ॥

नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय
सभा-चरं नरिष्ठायै भीमलं नर्माय रेभ ँ
हसाय कारिमानन्दाय स्त्रीषखं प्रमदे
कुमारी-पुत्रं मेधायै रथ-कारं धैर्याय तक्षाणम् ॥ ६ ॥
तपसे कौलालं मायायै कर्मारँ रूपाय
मणि-कार ँ शुभे वप ँ शरव्याया इषुकार ँ
हेत्यै धनुष्कारं कर्मणे ज्या-कारं दिष्टाय
रज्जु-सर्पं मृत्यवे मृगयुमन्तकाय श्वनिनम् ॥ ७ ॥

[१] ब्रह्मणे ब्राह्मणम् (१।१) । [२] क्षत्राय राजन्यम् (२।१) ।
[३] मरुद्भ्यो वैश्यम् (३।१) । [४] तपसे शूद्रम् (४।१) ।
[५] तमसे तस्करम् (४।२) । [६] नारकाय वीरहणम् (२।५) ।
[७] पाप्मने क्लीबम् (५।६) । [८] आक्रयायै अयोगुम् (३।२) ।
[९] कामाय पूंश्चलूम् (५।१२) । [१०] अतिक्रुष्टाय मागधम् (१।१४) ।

{ ६ } [११] नृत्ताय सूतम् (५।१४) ।

[१२] गीताय शैलूषम् (५।१३) । [१३] धर्मायसभाचरम् (१।११) ।
[१४] नरिष्ठायै भीमलम् (२।४) । [१५] नर्माय रेभम् (१।४४) ।
[१६] हसाय कारिम् (४।७) । [१७] आनंदाय स्त्रीषखम् (५।९) ।
[१८] प्रमदे कुमारीपुत्रम् (२।६) । [१९] मेधायै रथकारम् (२।२०) ।
[२०] धैर्याय तक्षाणम् (४।११) ।

{ ७ } [२१] तपसे कौलालम् (१।२) ।

[२२] मायायै कर्मारम् (४।३) । [२३] रूपाय मणिकारम् (४।४) ।
[२४] शुभे वपम् (४।१२) । [२५] शरव्यायै इषुकारम् (२।२१) ।
[२६] हेत्यै धनुष्कारम् (२।२२) । [२७] कर्मणे ज्याकारम् (२।२३) ।
[२८] दिष्टाय रज्जुसर्पम् (२।११) । [२९] मृत्यवे मृगयुम् (७।१) ।

नदीभ्यः पौञ्जिष्ठमृक्षीकाभ्यो नैषादं
पुरुष-व्याघ्राय दुर्मदं गंधर्वाऽप्सरोभ्यो
व्रात्यं प्रयुग्भ्य उन्मत्तꣳ सर्प-देव-जनेभ्यो
ऽप्रतिपदमयेभ्यः कितवमीर्यताया अ-
कितवं पिशाचेभ्यो विदल-कारीं यातु-
धानेभ्यः कण्टकीकारीम् ॥ ८ ॥

सन्धये जारं गेहायोपपतिमार्त्यै परिवित्तं
निर्ऋत्यै परिविविदानमराध्या एदिधिषुः पतिं
निष्कृत्यै पेशस्कारीꣳ संज्ञानाय स्मर-कारीं
प्रकामोद्यायोपसदं वर्णायाऽनुरुधं बलायोपदाम् ॥ ९॥

[३०] अन्तकाय स्वलिनम् (७।४) ।

{ ८ } [३१] नदीभ्यः पौञ्जिष्ठम् (२।३३) ।

[३२] ऋक्षिकाभ्यो नैषादम् (२।४४)।
[३३] पुरुषव्याघ्राय दुर्मदम् (२।७) ।
[३४] गंधर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यम् (१।६)।
[३५] प्रयुग्भ्यः उन्मत्तम् (१।५) ।
[३६] सर्पदेवजनेभ्यः अप्रतिपदम् (१।७) ।
[३७] अयेभ्यः कितवम् (१।३) ।
[३८] ईर्यतायै अकितवम् (२।१०)।
[३९] पिशाचेभ्यो विदलकारीम् (२।८) ।
[४०] यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम् (२।९) ।

{ ९ } [४१] सन्धये जारम् (२।५६) ।

[४२] गेहाय उपपतिम् (२।४७) ।
[४३] आर्त्यै परिवित्तिम् (२।४९)।
[४४] निर्ऋत्यै परिविविदानम् (२।५०) ।
[४५] अराध्यै एदिधिषुः पतिम् (२।५१) ।

उत्सादेभ्यः कुब्जं प्रमुदे वामनं द्वार्भ्यः स्रामं स्वप्नायान्धमधर्माय बधिरं पवित्राय भिषजं प्रज्ञानाय नक्षत्र-दर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुपशिक्षाया अभिप्रश्निनं मर्यादायै प्रश्न-विवाकम् ॥ १० ॥

अर्मेभ्यो हस्ति-पं जवायाश्व-पं पुष्ट्यै गो-पालं वीर्यायावि-पालं तेजसेऽज-पालमिरायै कीनाशं कीलालाय सुरा-कारं भद्राय गृह-पं श्रेयसे वित्तधमाध्यक्ष्यायानुक्षत्तारम् ॥ ११ ॥

[४६] निष्कृत्यै पेशस्कारीम् (४।५)।
[४७] संज्ञानाय स्मरकारीम् (१।४)।
[४८] प्रकामोद्याय उपसदम्(२।५५)
[४९] वर्णाय अनुरुधम् (२।५२)।
[५०] बलाय उपदाम् (२।३)।

{१०} [५१] उत्सादेभ्यः कुब्जम् (२।१२)।

[५२] प्रमुदे वामनम् (५।८)।
[५३] द्वार्भ्यः स्रामम् (२।४६)।
[५४] स्वप्नाय अन्धम् (५।४)।
[५५] अधर्माय बधिरम् (५।५)।
[५६] पवित्राय भिषजम् (१।२६)।
[५७] प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शम् (१।२८)
[५८] आशिक्षायैप्रश्निनम् (१।८)।
[५९] उपशिक्षायै अभिप्रश्निनम् (१।९)।
[६०] मर्यादायै प्रश्नविवाकम् (१।१०)।

{११} [६१] अर्मेभ्यः हस्तिपम् (२।२५)।

[६२] जवाय अश्वपम्(२।२६)।
[६३] पुष्ट्यै गोपालम् (३।६)।
[६४] वीर्याय अविपालम् (३।७)।
[६५] तेजसे अजपालम् (३।८)।
[६६] इरायै कीनाशम् (३।५)।
[६७]कीलालाय सुराकारम्(१।२५)।
[६८] भद्राय गृहपम् (२।४८)।
[६९] श्रेयसे वित्तधम् (३।४)।
[७०] आध्यक्ष्याय अनुक्षत्तारम् (२।१९)।

भायै दार्वाहारं प्रभाया अग्न्येधं ब्रध्नस्य विष्टपायाऽभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देव-लोकाय पेशितारं मनुष्य-लोकाय प्रकरितारꣳ सर्वेभ्यो लोकेभ्य उपसेक्तारमवऋत्यै वधायोपमन्थितारं मेधायै वासः पल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीम् ॥ १२ ॥

ऋतये स्तेन-हृदयं वैर-हत्याय पिशुनं विविक्त्यै क्षत्तारमौपद्रष्ट्र्यायाऽनुक्षत्तारं बलायाऽनुचरं भूम्ने परिष्कन्दं प्रियाय प्रियवादिनमरिष्ट्या अश्वसादꣳ स्वर्गाय लोकाय भाग-दुघं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम् ॥ १३ ॥

{ १२ } [७१] भायै दार्वाहारम् (४।१३)।

[७२] प्रभायै अग्न्येधम् (४।१४)। | [७३] ब्रध्नस्य विष्टपाय अभिषेक्तारम् (१।२४)।

[७४] वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम् (४।१८)। | [७५] देवलोकाय पेशितारम् (४।६)।

[७६] मनुष्यलोकाय प्रकरितारम् (२।५३)। | [७७] सर्वेभ्यः लोकेभ्यः उपसेक्तारम् (२।५४)।

[७८] अवऋत्यै वधाय उपमन्थितारम् (२।१४)। | [७९] मेधायै वासः पल्पूलीम् (१।२३)।

[८०] प्रकामाय रजयित्रीम् (४।१०)।

{ १३ } [८१] ऋतये स्तेन हृदयम् (२।१५)।

[८२] वैरहत्याय पिशुनम् (२।१६)। | [८३] विविक्त्यै क्षत्तारम् (२।१७)

[८४] औपद्रष्ट्र्याय अनुक्षत्तारम् (२।१८) | [८५] बलाय अनुचरम् (२।२)

मन्यवेऽयस्तापं क्रोधाय निसरं योगाय
योक्तारꣳ शोकायाऽभिसर्तारं क्षेमाय
विमोक्तारमुत्कूल-निकूलेभ्यस्त्रिष्ठिनं व-
पुषे मानस्कृतꣳ शीलायाञ्जनीकारीं
निर्ऋत्यै कोश-कारीं यमायाऽसूम् ॥ १४ ॥

यमाय यमसूमथर्वभ्योऽवतोकाꣳ संवत्सराय
पर्यायिणीं परिवत्सरायाऽविजातामिदाव-
त्सरायाऽतीत्वरीमिद्वत्सरायाऽतिष्कद्वरीं वत्स-
राय विजर्जराꣳ संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योऽ-
जिनसन्धꣳ साध्येभ्यश्चर्मम्नम् ॥ १५ ॥

[८६] भूम्ने परिष्कन्दम् (११३२)
[८७] प्रियाय प्रियवादिनम् (५।७)
[८८] अरिष्ट्यै अश्वसादम्)२।२४)
[८९] स्वर्गाय लोकाय भागदुघम् (११२९)
[९०] वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम् (४।१९)।

{ १४ } [९१] मन्यवे अयस्तापम् (४।१५)।

[९२] क्रोधाय निसरम् (११३४)
[९३] योगाय योक्तारम् (१।१९)।
[९४] शोकाय अभिसर्तारम् (१।३५)।
[९५] क्षेमाय विमोक्तारम् (१।२८)।
[९६] उत्कूलनिकूलेभ्यः त्रिष्ठिनम् (२।३७)।
[९७] वपुषे मानस्कृतम् (१।२१)।
[९८] शीलाय अंजनी-कारीम् (१।२२)
[९९] निर्ऋत्यै कोशकारीम् (१।३६)।
[१००] यमाय असूम् (१।१२)।

{ १५ } [१०१] यमाय यमसूम् (१।१३)।

[१०२] अथर्वभ्यः अवतोकाम् (१।२०)।
[१०३] संवत्सराय पर्यायिणीम् (१।४६)
[१०४] परिवत्सराय अविजाताम् (१।४७)।
[१०५] इदावत्सराय अतीत्वरीम् (१।४८)

सरोभ्यो धैवरमुपस्थावरेभ्यो दाशं वैशन्ताभ्यो
वैन्दं नड्वलाभ्यः शौष्कलं पाराय मार्गारमवाराय
कैवर्तं तीर्थेभ्य आन्दं विषमेभ्यो मैनालꣳ
स्वनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः किरातꣳ सानुभ्यो
जम्भकं पर्वतेभ्यः किंपुरुषम् ॥ १६ ॥

बीभत्सायै पौल्कसं वर्णाय हिरण्यकारं तुलायै
वाणिजं पश्चादोषाय ग्लाविनं विश्वेभ्यो भूतेभ्यः
सिध्मलं भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वपनमार्त्यै जन-
वादिनं व्यृद्ध्या अपगल्भꣳ सꣳशराय प्रच्छिदम्॥ १७॥

[१०६] इद्वत्सराय अतिष्कद्वरीम् (१।५०) । [१०७] वत्सराय विजर्जराम्(१।४५)।
[१०८]संवत्सराय पलिक्नीम्(१।४९) [१०९] ऋभुभ्यः अजिनसंधम् (४।१६) ।
[११०] साध्येभ्यः चर्मम्नम् (४।१७)।

{ १६ } [१११] सरोभ्यः धैवरम् (२।३४) ।

[११२] उपस्थावरेभ्यः दाशम् (२।४३) । [११३] वैशन्ताभ्यः वैन्दम्(२।३९)।
[११४] नड्वलाभ्यः शौष्कलम् (२।४०) । [११५] पाराय मार्गारम्(२।४१)।
[११६] अवाराय कैवर्तम् (२।४२) [११७] तीर्थेभ्यः आन्दम् (२।३५)।
[११८] विषमेभ्यः मैनालम्(२।३८)। [११९] स्वनेभ्यः पर्णकम् (४।२१) ।
[१२०] गुहाभ्यः किरातम् (२।३२)। [१२१] सानुभ्यः जम्भकम् (२।३१)।
[१२२] पर्वतेभ्य. किंपुरुषम्(२।३०)।

{ १७ } [१२३] बीभत्सायै पौल्कसम् (२।४५) ।

[१२४] वर्णाय हिरण्यकारम् (४।९) [१२५] तुलायै वणिजम् (३।३) ।
[१२६] पश्चादोषाय ग्लाविनम् (५।१०) । [१२७] विश्वेभ्यः भूतेभ्यः सिध्मलम् (५।११) ।

अक्ष-राजाय कितवं कृतायाऽऽदिनव-दर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाऽधिकल्पिनमास्कन्दाय सभा-स्थाणुं मृत्यवे गो-व्यच्छमन्तकाय गो-घातं क्षुधे यो गां विकृन्तन्तं भिक्षमाण उपतिष्ठति दुष्कृताय चरकाचार्यं पाप्मने सैलगम् ॥ १८ ॥

प्रतिश्रुत्काया अर्तनं घोषाय भषमन्ताय बहुवा-दिनमनन्ताय मूकꣳ शब्दायाऽऽडम्बराघातं महसे वीणा-वादं क्रोशाय तूण-वध्ममवरस्पराय शंखध्मं वनाय वनपमन्यतोऽरण्याय दावपम् ॥ १९ ॥

[१२८] भूत्यै जागरणम् (५।१) । [१२९] अभूत्यै स्वपनम् (५।२) ।
[१३०] आर्त्यै जनवादिनम् (१।१८)। [१३१] व्यृद्ध्यै अपगल्भम् (५।३)।
[१३२] संशराय प्रच्छिदम् (७।६)।

{१८} [१३३] अक्षराजाय कितवम् (२।५७) ।

[१३४] कृताय आदिनवदर्शम् (२।५८) । [१३५] त्रेतायै कल्पिनम्(२।५९)।
[१३६] द्वापाराय अधिकल्पिनम् (२।६०) । [१३७] आस्कंदाय सभास्थाणुम् (२।२७) । ॥
[१३८] मृत्यवे गोव्यच्छम् (७।२)। [१३९] अंतकाय गो-घातम् (७।३)।
[१४०] क्षुधे यो गां विकृन्तन्तं भिक्षमाण उपतिष्ठति (७।५) । [१४१] दुष्कृताय चरकाचार्यम् (१।२७) ।
[१४२] पाप्मने सैलगम् (२।१३)।

{१९} [१४३] प्रतिश्रुत्कायै अर्तनम् (१।३०) ।

[१४४] घोषाय भषम् (१।१५)। [१४५] अन्ताय बहुवादिनम् (१।१६) ।
[१४६] अनन्ताय मूकम् (१।१७) । [१४७] शब्दाय आडम्बराघातम् (४।२०) ।

नर्माय पूंश्चलूꣳ हसाय कारिं यादसे शाबल्यां ग्रामण्यं गणकमभिक्रोशकं तान्महसे वीणावादं पाणिघ्नं तूण-वध्मं तान्नृत्तायानन्दाय तलवम् ॥ २०॥

अग्नये पीवानं पृथिव्यै पीठसर्पिणं वायवे चाण्डालमन्तरिक्षाय वꣳशनर्तिनं दिवे खलतिꣳ सूर्याय हर्यक्षं नक्षत्रेभ्यः किर्मीरं चन्द्रमसे किलासमह्ने शुक्लं पिङ्गाक्षꣳ रात्र्यै कृष्णं पिङ्गाक्षम् ॥ २१ ॥

[१४८] महसे वीणावादम् (५।१५)।
[१४९] क्रोशाय तूणवध्मम् (४।२२)।
[१५०] अवरस्पराय शंखध्मम् (४।२३)।
[१५१] वनाय वनपम् (२।२८)।
[१५२] अन्यतः अरण्याय दावपम् (२।२९)।

{ २० } [१५३] नर्माय पूंश्चलूम् (१।४३)।

[१५४] हसाय कारिम् (४।८)।
[१५५] यादसे शाबल्याम् (२।३६)।
[१५६] महसेग्रामण्यम् (१।३१)।
[१५७] महसे गणकम् (१।३७)।
[१५८] महसे अभिक्रोशकम् (१।३३)।
[१५९] नृत्ताय वीणावादम्(५।१६)।
[१६०] नृत्ताय पाणिघ्नम्(५।१७)।
[१६१] नृत्ताय तूणवध्मम् (५।१८)।
[१६२] आनंदाय तलवम् (५।१९)

{ २१ } [१६३] अग्नये पीवानम् (२।६१)।

[१६४] पृथिव्यै पीठसर्पिणम् (२।६२)।
[१६५] वायवे चांडालम् (२।६३)।
[१६६] अंतरिक्षाय वंशवर्तिनम् (२।६४)।
[१६७] दिवे खलतिम् (१।३९)
[१६८] सूर्याय हर्यक्षम् (१।४०)।
[१६९] नक्षत्रेभ्यः किर्मीरम् (१।४१)।

अथैतानष्टौ विरूपानालभते ऽतिदीर्घं चातिह्रस्वं चातिस्थूलं चातिकृशं चातिशुक्लं चातिकृष्णं चातिकुल्वं चातिलोमशं च ॥ अशूद्रा अब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः ॥ मागधः पुंश्चली कितवः क्लीबोऽशूद्रा अब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः ॥२२॥

[१७०] चन्द्रमसे कीलासम् (१।४२)।
[१७१] अह्ने शुक्लं पिंगाक्षम् (२।६५)।
[१७२] रात्र्यै कृष्णं पिंगाक्षम् (२।६६)

{२२} अथ एतान् अष्टौ विरूपान् आलभते । ते अष्टौ अशूद्राः अब्राह्मणाः प्राजापत्याः ।

[१७३] अतिदीर्घम् (६।१)।
[१७४] अतिह्रस्वम् (६।२)।
[१७५] अतिस्थूलम् (६।३)।
[१७६] अतिकृशम् (६।४)।
[१७७] अतिशुक्लम् (६।५)।
[१७८] अतिकृष्णम् (६।६)।
[१७९] अतिकुल्वम् (६।७)।
[१८०] अतिलोमशम् (६।८)।

अथ पुनः अशूद्राः अब्राह्मणाः प्राजापत्याः चत्वारः ।

[१८१] मागधः (६।९)
[१८२] पूंश्चली (६।१०)।
[१८३] कितवः (६।११)
[१८४] क्लीबः (६।१२)॥

यजुर्वेदका स्वाध्याय ।

अध्याय ३० का स्पष्टीकरण ।

पुरुषमेध प्रकरण १. (पूर्वार्ध)

मंत्र १

(१) सत्कर्मकी प्रेरणा, सत्कर्मकी रक्षा, ज्ञानसे पवित्रता और वाणीका माधुर्य ।

'मेध' शब्दका अर्थ 'मिलना, परस्पर संगति करना, मिलाप करना, जोडना, परस्परको जानना, परस्परका भाव समझना, परस्पर प्रेम करना, परस्परकी उन्नति करना' है । 'पुरुष' शब्दका अर्थ 'मनुष्य, मानवजाति, नागरिक, पौर' है । अर्थात् पुरुषमेधका अर्थ 'मनुष्योंका परस्पर मेलमिलाफ करना, परस्पर संगति करना, परस्पर जानना, परस्परोंका प्रेम बढाना, ऐक्य भाव बढाकर परस्परकी उन्नति करनेके लिये एक दूसरेको सहाय्य करना' है । यह पुरुषमेधका मूल आशय है । इस आशयकी पूर्ति करनेके लिये जिन जिन अनेक साधनोंकी आवश्यकता है, उनका वर्णन इस अ० ३० तथा अगले अ० ३१ में हुआ है । उक्त उद्देशकी सफलता और सुफलता होनेके लिये निम्न गुणोंका धारण करना चाहिए। (१) मनुष्योंमें सत्कर्म करनेकी प्रेरणा होनी चाहिए, (२) कोई अन्य पुरुष सत्कर्म करता हो, तो उसको सहायता करके, उसके सत्कर्मका संरक्षण और संवर्धन करनेकी प्रबल इच्छा चाहिए, (३) ज्ञानसे अपने आपको शुद्ध करके सब अन्योंको शुद्ध करनेका प्रयत्न होना चाहिए, तथा (४) वाणीके अंदर मीठा, परंतु हितकारक, भाषण करनेकी शक्ति बढानी चाहिए । यही उद्देश प्रथम मंत्रका है ।

"परमेश्वर सबको सत्कर्म करनेकी तथा सत्कर्मका संरक्षण करनेकी बुद्धि देवे। अपने ज्ञानसे पवित्रता करनेवाला ज्ञानी हम सबके ज्ञानको पवित्र करे। तथा उत्तम वक्ता हम सबके वाणीको मधुर बनावे। जिससे हम सबकी उन्नति हो सके॥"

यह आशय प्रथम मंत्रका है। उन्नति चाहनेवाले मनुष्योंके अंदर जिन जिन गुणोंका विकास होनेकी आवश्यकता है, उन गुणोंका उल्लेख उक्त मंत्रमें है। (१) सत्कर्मकी प्रेरणा, (२) सत्कर्मका संरक्षण, (३) ज्ञानसे पवित्रता और (४) वाणीका माधुर्य; ये चार सद्गुण है कि, जिनसे मनुष्योंमें संघशक्तिका तेज प्रकाशने लगता है। इस आशयको ध्यानमें रखकर अब इस मंत्रका विचार करेंगेः—

"देव सवितः।"

'सविता देव' परमेश्वरका नाम है। देखीएः—

'सविता वै देवानां प्रसविता'

शत. ब्रा, १।१।२।१७॥

सूर्य, चंद्र, पृथ्वी, वायु, अग्नि आदि सब देवोंका उत्पन्नकर्ता परमेश्वर है। उसकी प्रार्थना इन दो शब्दोंसे की है। सब देवोंकी उत्पत्ति सविता करता है, इस विषयमें निम्न मंत्र देखने योग्य हैः—

युक्त्वाय सविता देवान् त्स्वर्यतो धिया दिवम्॥
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान्॥

यजु. ११।३॥

"सविता देव (तान्) उन देवोंको (प्रसुवाति) उत्पन्न करता है, कि जो (बृहत् ज्योतिः) बडा तेज फैलाते हैं, और (धिया) अपने कर्तव्य कर्मसे (दिवं स्वः यतः) द्युलोकमें प्रकाशको फैलाते हैं। उन देवोंको (सविता) सबका उत्पादक ईश्वर (युक्त्वाय) अपने अपने कर्मोंमें नियुक्त करता है।"

'सविता देव' सूर्यादि सब तेजस्वी पदार्थोंको उत्पन्न करके उनको अपने अपने मार्गसे भ्रमण आदि कर्ममे लगा देता है। पृथ्वीका कर्म अन्न उत्पन्न करना, सूर्यका कर्म प्रकाश देना, वायुका कर्म जीवनशक्ति देना है। इन कर्मोंमे परमेश्वरकी शक्तिसे ये सब देव नियुक्त हुए है। इस मंत्रको देखनेसे 'सविता' शब्दका अर्थ 'परमेश्वर' हि है ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। परमेश्वरका वर्णन यजु. अ. ३२ का स्वाध्याय **'सर्व-पूज्यकी पूजा'** नामसे छप चुका है, उसमें देखने योग्य है। सवि-ताका वर्णन तैत्तिरीय ब्राह्मणमें है:—

सविता प्रसविता दीप्तो दीपयन् दीप्यमानः ।

तैत्ति० ब्रा० ३।१०।१।२ ॥

'सविता सबका उत्पादक है। वह स्वयं तेजस्वी है, और सबको प्रकाशित करता है।' इत्यादि प्रकारका वर्णन देखनेसे निश्चय होता है, कि 'सविता' का मूल अर्थ 'परमेश्वर' है, पश्चात् इस शब्दका 'सूर्य' ऐसा अर्थ हुआ।

'सु' धातुसे 'सविता' शब्द बनता है। 'प्रसव, ऐश्वर्य, प्रेरणा' ये तीन अर्थ इस धातुके है। (१) उत्पन्न करना, (२) प्रभुत्व करना, और (३) प्रेरणा करना, ये तीन भाव 'सविता' शब्दमें है। सबको धर्मकी प्रेरणा करनेवाला परमेश्वर हि सविता है।

'प्रसुव यज्ञम् ।'

'यज्ञकी प्रेरणा करो' यह इस मंत्रकी पहिली प्रार्थना है। प्रशस्ततम कर्म अर्थात् अत्यंत उच्च कर्मका नाम यज्ञ है। यजु. अ. १ । १ में कहा है कि, '**देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्या-यध्वम्** ।' हे लोको ! आप सबको परमेश्वर अत्यंत उच्च कर्मोंकेलिये प्रेरणा करे। आप सब उच्च कर्मोंको करते हुए उन्नत हूजिए ॥ यह उपदेश यजुर्वेदके प्रारंभमेंहि है। सब यजुर्वेदमें **'श्रेष्ठतम कर्म'**काहि अधिकार चलता है। यजुर्वेदका अर्थ

'श्रेष्ठतम-कर्मका' शास्त्र (Science of holy action) ऐसा है। इसलिये संपूर्ण यजुर्वेदमें 'यज्ञ अथवा कर्म' का अर्थ 'श्रेष्ठतम कर्म' ऐसाही है। 'श्रेष्ठतम कर्मकी प्रेरणा करो' यह उपदेश उक्त वाक्यसे मिलता है। प्रत्येक मनुष्यमें अत्यंत श्रेष्ठ कर्म करनेकी महत्वाकांक्षा चाहिए और प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि वह अत्यंत श्रेष्ठ कर्म करनेके लिये अन्योंको प्रेरणा देता रहे। सर्वत्र उत्साहकी प्रेरणा होनी चाहिए। वैदिक धर्महि 'उत्साहका धर्म' है। इसलिये प्रारंभसे अंततक अत्यंत श्रेष्ठ कर्म करनेका उत्साह वैदिक धर्ममें दिया गया है।

उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि और पराक्रम ये आठ गुण वैदिक धर्मके आधार हैं; उत्साह, स्फूर्ति और प्रेरणा ये तीन गुण इस वैदिक धर्मका जीवन है; (१) सत्कर्म करनेमें किसी भी प्रतिबंधकी पर्वाह न करना, (२) सत्कर्म करनेके कार्यमें आनेवाले सब आपत्तियोंको आनंदसे सहन करना (३) सत्कर्म करनेके लिये अपने आपको योग्य बनानेके कारण आंतर और बाह्य इंद्रियोंको अपने आधीन रखना, (४) किसी समय और किसी कारण भी चोरीका भाव न धरना, (५) सब कालमें, सब अवस्थामें सब प्रकारकी पवित्रता रखना (६) सदा सर्वदा आत्मिक बलको धारण करना, (७) सदा सर्वदा अपनी बुद्धिका तेज ज्ञानसे बढाना, (८) सदा सर्वदा सत्यके ऊपर दृढ रहना, (९) कभी क्रोध न करना क्योंकि क्रोधसे अपनाही नुकसान हुआ करता है, इस-लिये सब प्रकारकी अवस्थामे मन, बुद्धि और आत्माको शांत रखना, (१०) सदा परमेश्वरकी महानता पर विश्वास रखना; ये दस गुण है कि जिनसे मनुष्य वैदिक धर्मका पालन कर सकता है।

दुर्बल, उत्साह-हीन, धैर्यहीन, निर्बुद्ध, निस्तेज, पराक्रम-हीन, वीर्य-हीन, दैव-वादी जो लोक होते है वेही लोक पापी होते है। वैदिक धर्ममे दैववादके लिये स्थान नहीं। यह पुरुपार्थका धर्म है। उत्तम पुरुपार्थ करनेके लिये कभी डरना नहीं चाहिए। अपने बल पर निर्भर रहनेका भाव सदा सर्वदा धारण करना चाहिए। 'पुरुपार्थ करनेकी प्रबल प्रेरणा' इस मंत्रने दी है। इसी भावको प्रकाशित करनेके लिये जैमिनी मुनी कहते हैं:—

अथातो धर्मजिज्ञासा ॥ १ ॥
चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः ॥ २ ॥

पूर्वमीमांसा ॥ १ ॥

"अब धर्मका विचार करते हैं। जिससे श्रेष्ठ पुरुषार्थ करनेकी प्रेरणा होती है, वहही धर्म है।" यह सब भाव मनमे धर कर उक्त वाक्य '**प्रसुव यज्ञं**' देखना चाहिए। सत्कर्मकी प्रेरणा करनेके विषयमे निम्न मंत्र देखीएः—

प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिमा इव ग्मन् ॥ गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥

ऋ. १०।२९।५ ॥

"(जनिमा इव) जन्म देनेवाली स्त्रियां जिस प्रकार अपने पुत्रोंको प्रेरणा देती हैं, तथा (सूरः न) विद्वान् जिस प्रकार अपने शिष्योंको प्रेरणा देते है, उस प्रकार (पारं) आपत्तिके पार होनेके लिये और (अर्थं) पुरुपार्थ करनेके लिये उन लोकोंको (प्रेरय) प्रेरणा करो, कि (ये) जो लोक (अस्य कामं) इस ईश्वरकी इच्छाके अनुसार (ग्मन्) चलते है अर्थात् आचरण करते है। हे (तुविजात नर इन्द्र) बलवान, अग्रणी प्रभू ! (ये) जो लोक (अन्नैः) अन्नोंके द्वारा लोकोंको साहाय्य करते हैं, तथा जो (ते पूर्वीः गिरः) तेरा पूर्ण अथवा प्राचीन उपदेश हरएकको (प्रति शिक्षन्ति) सिखाते हैं।" उनको प्रेरणा करो।

(१) परमेश्वरका संदेशा दूसरोंतक पहुचानेवाले, (२) अन्नके द्वारा दूसरोंकी सहायता करनेवाले, और (३) परमेश्वरकी आज्ञाके अनुसार अपना आचरण करनेवाले जो होते है; उनको कष्टोंसे पार होनेके लिये तथा अधिकाधिक पुरुपार्थ करनेके लिये परमेश्वरसे प्रेरणा होती है। यह आशय उक्त मंत्रका है। परमेश्वरकी प्रेरणा अपने अंतःकरणमें धारण कर-

नेके लिये कौन पुरुष योग्य है इसका उपदेश इस मंत्रसे मिलता है। मनुष्योंको भी उचित है कि, वह स्वयं सत्कर्ममें प्रेरित होकर दूसरोंकोभी उच्च कर्मोंके लिये सदा सर्वदा उत्साहित करता रहे ॥

"प्रसुव यज्ञ-पतिं भगाय ।"

'(भगाय) ऐश्वर्यके लिये यज्ञके पालन-कर्ताको प्रेरणा करो ।' यह इच्छा इस मंत्रभागमें व्यक्त हुई है । यहां 'भग' शब्दका अर्थ देखना है । भग—Prosperity उन्नति, अभ्युदय, dignity महानता, महत्व; distinction विशेषता; glory यश, प्रताप; Beauty सुंदरता; excellence उत्तमता, उत्कृष्टता, love प्रीति; virtue सद्गुण; morality नीतिधर्म, exertion प्रयत्न, पुरुषार्थ; indifference to worldly pleasure वैराग्य, निस्पृहता; freedom स्वातंत्र्य, मुक्ति; strength बल; desire इच्छाशक्ति । 'भग' शब्दके इतने अर्थ है, इन गुणोंकी प्राप्तिके लिये सत्कर्मके पालनकर्ताको प्रेरणा करो; अर्थात् सत्कर्मोंका संरक्षण करके, इन गुणोंका धारण, पालन और पोषण करना चाहिए। 'पति' का अर्थ 'पालक' है पश्चात् उसका 'स्वामी' अर्थ हुआ है ।

सत्कर्मकी प्रेरणा और सत्कर्मका संरक्षण ये उन्नतिके दो साधन हैं । स्वयं सत्कर्म करना, स्वयं अच्छा पुरुषार्थ, अच्छा उद्योग करना और दूसरोंको वैसा करनेके लिये प्रेरणा करना, तथा दूसरे लोक जो जो उत्तम कार्य कर रहे होंगे, उसका पालन और संवर्धन करना चाहिए । जिससे सत्कर्मका प्रवाह सतत चलता रहेगा और अप्रतिबद्ध उन्नति हो सकेगी। और देखीए:—

महे उग्राय तवसे सुवृक्तिं प्रेरय शिवतमाय० ॥

ऋ. ८।९६।१०

"(शिवतमाय) उत्तम कल्याणके लिये, (तवसे) बलके लिये, (उग्राय) क्षात्रतेजके लिये तथा (महे) महत्वके लिये (सु-वृक्तिं) शुद्ध कर्मकी (प्रेरय) प्रेरणा करो ।" शुद्ध कर्म किस कार्यके लिये करने चाहिए, इसका उपदेश इस मंत्रमें हुआ है । सत्कर्मसे उन्नति होती है, ऐसा निम्न मंत्रमें कहा है:—

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत्* ॥
चक्राण ओपशं दिवि ॥

ऋ. ८।१४।५ अथर्व. २०।२७।५ ॥

"यज्ञनें इन्द्रको बढाया, जिसनें भूमीको वारंवार घुमाया और जिससे द्युलोकमें वह भूषणरूप बनाया गया है ।" अर्थात् जो इन्द्रका प्रभुत्व है, वह यज्ञ अर्थात् 'सत्कार-संगति-दानात्मक' सत्कर्मके कारणहि है। जो पूजनीयोंका सत्कार, श्रेष्ठोंसे संगति और दीनोंको दान करेगा अर्थात् इस प्रकारके सत्कर्म करेगा, वह इन्द्रत्व अर्थात् प्रभुत्व प्राप्त करेगा । श्रेष्ठत्व प्राप्तिके लिये सत्कार-संगति-दानात्मक सत्कर्म करने चाहिए ।

तथाः—

स्वर्यन्तो नाऽपेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी ॥
यज्ञं ये विश्वतो-धारं सुविद्वांसो वितेनिरे ॥

अथर्व ४।१४।४ ॥

"(ये) जो (सु-विद्वांसः) उत्तम विद्वान् (विश्वतो-धारं यज्ञं) सब प्रकारसे धारण-पोषण करनेवाले सत्कर्मोंको (वि-तेनिरे) विशेष प्रकारसे फैलाते हैं, वे (रोदसी द्यां रोहन्ति) दोनो लोकोंमेंसे ऊपर होते हुए स्वर्ग पर चढते है, और (स्वः यन्तः) अपने तेजको फैलाते हुए (न अपेक्षन्ते) किसी अन्यकी सहायताकी अपेक्षा नहीं करते । "

'यज्ञ'का यौगिक अर्थ ।

'यज्ञ' का **अर्थ—सत्कार** (honour) **'संगति** (union, association') **दान** (charity) **इसप्रकार है । 'न अपेक्षन्ते' का अर्थ— वे किसीकी अपेक्षा नहीं करते,** They do not wait for anybody for help, They do not require anybody's help, They do not stand in need of...) **यह सत्कर्मका फल है । तथाः—**

---

* **"भूमिं व्यवर्तयत्"** इस वाक्यसे 'भू-विवर्त,' 'भूमि-परिभ्रमण' का भाव सिद्ध है । 'विवृत्' धातुका अर्थ 'वारवार चक्रवत् घूमना' है । भूमि वारवार चक्राकार घूमती है । इन्द्र अर्थात् स्वामी परमेश्वर उस भूमिको घुमाता है ।

यज्ञं तपः ॥ तैत्ति० आ० १०।८।१ ॥

"यज्ञ एक प्रकारका तप हि है ।" अथवा तपसेहि यज्ञ होता है । सत्कर्म करनेके समय होनेवाले कष्टोंको सहना हि तप है । जो लोक इन्द्रियोंके सुखोंके लिये हि कार्य करते हैं, उनसे सत्कर्म नहीं हो सकता । सत्कर्म करनेके लिये स्वार्थी इन्द्रिय-सुखोंकी लालसा कम करनी पडती है । इस प्रकार अपना सुख कम करके दूसरोंका सुख बढानेके लिये जो प्रयत्न होते हैं, वे यज्ञरूप होते है ।

इस प्रकारके यज्ञ जो करते हैं, और जो सत्कर्मोंका संवर्धन करते है वे "यज्ञ-पति" कहलाते है । संघशक्ति बढानेमे इस प्रकारके पवित्र कर्म करनेवालोंकी बहुत आवश्यता होती है । इस लिये ऐसे सज्जनोंको उचित है, कि वे स्वयं सत्कर्म करते हुए, वैसे सत्कर्म करनेके लिये दूसरोंको भी प्रेरित करते रहें ।

"दिव्यो गन्धर्वः केत-पूः केतं नः पुनातु ।"

'गां वाचं धारयतीति गं-धर्वः ॥' महीधर भाष्य यजु० ११।७ ॥ उत्तम वाणीका धारण करनेवाला जो उत्तम वक्ता होता है, उसका नाम 'गं-धर्व' होता है । उत्तम गायकोंको भाषामे गंधर्व कहते है । इस प्रकारका जो दिव्यगुणयुक्त वक्ता होता है, वह अपने ज्ञानसे हम सबके ज्ञानको पवित्र करे । यह इच्छा इस मंत्रमे है । ज्ञानीके ज्ञानद्वारा साधारण मनुष्योंके ज्ञान पवित्र होते है । श्रेष्ठों द्वारा निकृष्टोंका उद्धार होना है । गुरु अथवा अध्यापकों द्वारा शिष्योंकी बुद्धि पवित्र होनी है । वृद्धों द्वारा जवानोंकी उन्नति होनी है । यही उपदेश आगे इसी अध्यायमे आनेवाला है, जैसाः—

ब्रह्मणे ब्राह्मणं, क्षत्राय राजन्यम् ।

यजु. अ. ३०।५

"ज्ञानके लिये ज्ञानीको, शौर्यके लिये क्षत्रियको प्राप्त करो ।" जो ज्ञान प्राप्त करना चाहते है वे ज्ञानीके पास चले जावें, तथा जो शौर्य

प्राप्त करना चाहते हैं वे शूरोंके पास जावें । श्रेष्ठ पुरुषोंके पास जाकर श्रेष्ठ गुणोंकी प्राप्ति करनी चाहिए। यही उन्नतिका मार्ग है ।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत ॥

कठ उप० ३।१४

"उठो, जागो, और श्रेष्ठोंको प्राप्त करके बोध प्राप्त करो" श्रेष्ठ ज्ञानी पुरुषोंके पास जाकर श्रेष्ठ गुणोंको प्राप्त करके उन गुणोंका अपने अन्दर धारण पोपण और संवर्धन करना चाहिए। और जब वे श्रेष्ठगुण अपने अन्दर बढ जायेंगे; तब दूसरोंको श्रेष्ठ बनानेके लिये, अपने सुख दुःखकी पर्वाह न करते हुए, अहर्निश प्रयत्न करना चाहिए ।

'केत' शब्दमें 'कित्' धातु है, जिसका अर्थ–To know जानना; to think सोचना, विचार करना; to care दुःख दूर करना, दुरुस्त करना, अच्छा करना; to heal आराम पहुंचाना; to live जीना, to desire इच्छा करना है । इस कारण 'केत' शब्दका यौगिक अर्थ 'ज्ञान, विचार, चिकित्सा, दुरुस्ती, भलाई, जीवनशक्ति, इच्छाशक्ति' इतना है । स्वयं अपने अंदर इन गुणोंकी स्थापना करके, दूसरोंको इनकी धारणा करनेके लिये उत्साहित करना चाहिए । देखिए । स्वयं ज्ञानी बनकर दूसरोंको ज्ञानी बनाना, स्वयं सुविचार करके दूसरोंको सुविचार-शील बनाना, स्वयं दूसरोंके दुःख दूर करके वैसे कार्योंमें दूसरोंको लगाना, स्वयं दूसरोंका भला करके दूसरोंको अन्योंकी भलाई करनेके लिये उत्साहित करना, स्वयं अपना जीवन पवित्र करके दूसरोंका जीवन पवित्र कराना, स्वयं अपनी इच्छाशक्तिका बल बढाकर दूसरोंकी इच्छाशक्ति (Will power) बढानेका प्रयत्न करना। यह भाव उक्त मंत्रमें है ।

"वाचस्पतिः वाचं नः स्वदतु ।"

"वाणीका स्वामी हम सबकी वाचाको मीठी बनावे।" जो वाचाका

उपयोग अच्छी प्रकार कर सकता है उसको वाचाका स्वामी कहते हैं। सरस्वती अर्थात् विद्या विद्वानकी दासी बनकर उसकी सेवा करती है, ऐसा कवी लोक वर्णन करते हैं । जिनकी वाणी मीठी होती है, परंतु जिनका उपदेश परिणाममें हितकारक होता है, वे विद्वान् उपदेश करके हम सबकी वाणी मीठी बनावे । धर्मके उपदेशक ऐसे ही मधुरभाषी होने चाहिए।

वाणीमें मिठास न होनेसे लडाई, झगडे, फिसाद, तथा द्वेष होते है। इसलिये वाणीमें मिठास रखनेका उपदेश किया है। 'स्वदतु' का अर्थ 'स्वादयतु' अर्थात् 'स्वाद उत्पन्न करे,' मधुर बनावे, मीठी बनावे' ऐसा है। वाचस्पतिका कार्य अथर्ववेदके प्रथम सूक्तमें दिया है:-

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ॥
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥ १ ॥
पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह ॥
वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥ २ ॥
इहैवाभि वि तनूभे आर्त्नी इव ज्यया ॥
वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥ ३ ॥
उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान्वाचस्पतिर्ह्वयताम् ॥
सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि ॥ ४ ॥

अथर्व १।१ ॥

"(१) जो त्रि गुणित सात तत्त्व जगतके सब रूपोंको बनाते हैं, (२) मेरे शरीर आज, वाचाके स्वामीकी कृपासे उन तत्वोंके बलोंको धारण करें ॥ (३) हे वाणीके स्वामी ! दिव्य गुणयुक्त मनके साथ तूं फिर हमारे पास आओ। (४) मैने जो कुछ ज्ञान सुना है, वह मेरे अंदर सदा रहे ॥ (५) जिस प्रकार धनुष्यकी डोरीसे धनुष्यके दोनों नोक तने रहते हैं, उस प्रकार यहां मेरे दोनों शरीर ज्ञानकी डोरीसे बंधे हुए रहें। वाचाके पतीकी कृपासे सुना हुआ ज्ञान मेरे अंदर दृढ

रहे ॥ (६) वाणीके पतिका हम सब वर्णन करते हैं, वह भी हम सबकी सहायता करे । (७) उसकी सहायताद्वारा (श्रुतेन) श्रेष्ठ ज्ञानसे (सं गमेमहि) हम सब युक्त होवें । (८) कोई मनुष्य ज्ञानके साथ विरोध न करे ॥ ”

उत्तम वक्ताके कर्तव्य इन मंत्रोंमें अच्छी प्रकार कहे हैं । (१) जगत्के तत्वोंका ज्ञान प्राप्त करना, (२) शरीरका बल वृद्धिंगत करना, (३) मन दिव्य गुणोंसे युक्त करना, (४) ज्ञानकी जागृति सदा रखनी, (५) शरीर और मनका संबंध दृढ रखना, (६) विद्वान और अविद्वान दोनोंने एक दूसरेकी सहायता करना, (७) सदा सर्वदा ज्ञान प्राप्त करते रहना, (८) ज्ञानका कभी विरोध न करना । ये उपदेश है कि, जो ज्ञानीको तथा साधारण मनुष्योंको भी सदा ध्यानमें रखने चाहिए। और देखिएः—

वाचस्पतिस्त्वा पुनातु ॥ मैत्रायणी सं० १।२।१

“वाणीका स्वामी तुझे पवित्र करे । ” जनताको पवित्र करना, लोकोंके अंतःकरणोंको शुद्ध, निर्मल, सतेज, और उत्साही बनाना उत्तम वक्ताका ही कार्य है।

वाचस्पते सौमनसं मनश्च गो-ष्ठे नो गा जनय ॥

अथर्व. १३।१।१९

“हे वाणीके स्वामी ! हमारे अंदर उत्तम मननशक्तिके साथ मन, तथा (गाः) उत्तम इंद्रिय, हम सबके इन्द्रियस्थानमें स्थिर करो ।” लोकोंका मन सुसंस्कृत करना उत्तम वक्ताका कार्य है । उत्तम लेखकका भी यही कार्य समझा जा सकता है । वाणीकी शक्ति बडी भारी है; इसलिये उसका अच्छाही उपयोग करना चाहिए, देखिएः—

वाचा देवताः ॥ काठक स.३५।१५॥

वाचा ब्रह्म ॥ तै. स. ७।३।१४।१ ॥

"वाचा बडी देवता है । " "वाक्शक्ति साक्षात् ब्रह्म है । " इतनी बडी शक्ति मनुष्योंके पास ईश्वरकी कृपासे प्राप्त हुई है । परंतु शोक है कि उस वाक्शक्तिका कितना दुरुपयोग लोक कर रहे हैं, और झगडे खडे करके अपनाही नाश कर रहे हैं ! ! इसलिये सब लोकोंको उचित है, कि बोलने तथा लिखनेके समय सोचकर मधुरताके साथहि शब्दोंका प्रयोग किया करें, जिससे आपसमें मित्रता बढेगी और आपसका शत्रुत्व हट जायगा । वाणीकी मधुरताके विषयमें अथर्व वेद कहता हैः—

जिह्वया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् ॥
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥ २ ॥
मधुमन्मे निष्क्रमणं मधुमन्मे परायणम् ॥
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः ॥ ३ ॥

अथर्व १।३४ ॥

" (१) मेरी जिह्वाके अग्रभागमें माधुर्य है । (२) मेरी जिह्वाके मूलमें मधुरता है । (३) इसलिये यहां (मम क्रतौ) मेरे सत्कार्यमें आओ । और मेरे चित्तके साथ मिलो ॥ (४) मेरा चालचलन मीठा है (५) मेरा व्यवहार मीठा है । (६) मै वाणीसे मीठा भाषण करता हूं (७) जिससे मैं मधुरताकी मूर्ति बनूंगा ॥ "

अपनी वाणी, अपना कर्म, अपना चालचलन, अपना सब व्यवहार माधुर्यके साथ करने चाहिए । माधुर्यकी मूर्ति बनकर समाजके अन्दर ऐक्यकी शक्ति उत्पन्न करनी चाहिए । प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि वह अपने शब्द, अपने कर्म, और अपने व्यवहारकी जांच इन मंत्रोंमें कहे हुए उपदेशके अनुसार प्रतिसमय करे और मंत्रमें कहा हुआ आदर्श मधुर-पुरुष बननेका प्रयत्न दृढ इच्छापूर्वक करे ।

अस्तु इस प्रकार प्रथम मंत्रका विचार करनेके पश्चात् अब दूसरे मंत्रका विचार करेंः—

*मंत्र २

(२) ईश्वरके तेजका ध्यान ।

उपासना ।

"परमेश्वरके उस श्रेष्ठ तेजका हम सब ध्यान करते हैं कि जो हम सबकी बुद्धियोंको प्रेरणा करता है । "

परमेश्वरमें सब श्रेष्ठ सद्गुणोंकी पराकाष्ठा है । शक्ति, बल, तेज, आनंद, पवित्रता आदि सब श्रेष्ठ सद्गुण उसमें अपरिमित है । प्रत्येक सद्गुणकी परमावधिकी कल्पना ही परमेश्वरकी कल्पना है । इस लिये उसका ध्यान अथवा उसकी उपासना करनेके समय, उसके एक एक सद्गुणके अपरिमित महत्वका चितन करना चाहिए । अपरिमित सामर्थ्य, अपरिमित तेज, अपरमित पवित्रता, अपरमित ज्ञान, अपरमित आनंदका चिंतन करनेसे परमेश्वरका ध्यान होता है । इस प्रकार सद्गुणोंका चिंतन करना 'सगुण उपासना' है ।

मनुष्य जिसका चिंतन करता है, वैसा बनता है। यदि वह उत्कृष्ट सद्गुणोका चितन करेगा, तब वह उत्कृष्ट सद्गुणोंसे सुशोभित होगा। परतु किसी कारण दूसरोंके बुराइयोंका चिंतन करता रहेगा, तो वह स्वय कालांतरके पश्चात् उन बुराइयोंसे युक्त होगा। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको अपना ध्यान उत्कृष्ट सद्गुणोंमें हि स्थिर करनेका अभ्यास करना उचित है ।

मनुष्योंके इतिहासका विचार करनेके समय भी, किन किन सद्गुणोंसे ऐतिहासिक पुरुषोंकी उन्नति हुई थी, इसीकाहि विशेष चिंतन करना चाहिए, न कि उनके दुर्गुणोंका । प्रत्येक मनुष्यमें सद्गुण और दुर्गुण

---

* इस मन्त्रका विवरण यजु अ. ३६ 'सच्ची शांतिका सच्चा उपाय । ' नामक पुस्तकमे देखिए । मूल्य ॥) आठ आना ।

न्यूनाधिक प्रमाणसे रहतेहि हैं। हमको उचित है कि उनके सद्गुणोंकी ओर हम देखे और उनके दुर्गुणोंका चिंतन न करें । दस मनुष्योंके चरित्रोंसे दस सद्गुण ग्रहण किये जांय, तो अपने पास दस सद्गुण बढ सकते हैं, परंतु यदि उन दस पुरुषोंके चरित्रोंसे हम दस दुर्गुणहि लेवे, तो हम दस दुर्गुणोंमे दुष्ट बन सकते है । इसलिये **'सदा सर्वदा अपने मनको सद्गुणोंके मनन में हि लगाना'** चाहिए ।

यन्मनसा मनुते तद्वाचा वदति ।
यद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति ।
यत्कर्मणा करोति तदभि संपद्यते ॥

"जिस प्रकार मनसे विचार होता है उस प्रकार वाणीसे उच्चार होता है; जिस प्रकार वाणीसे उच्चार होता है उस प्रकार आचार बनता है; जिस प्रकार आचार बनता है, वैसा मनुष्य बन जाता है ।" यह सबको ध्यानमें धरना चाहिए और विचार, उच्चार, आचारकी पवित्रता करनी चाहिए । इसी हेतुसे कहा है कि संघशक्ति बनानेवालोंको परमेश्वरके **'श्रेष्ठ तेजकाहि ध्यान'** करना चाहिए । श्रेष्ठ गुणोंका चिंतन करनेसे उच्च मार्ग पर चलनेकी प्रेरणा होती है । अस्तु इसी गुरुमंत्रके समान एक मंत्र है, उसका यहां विचार करना उचित है:—

तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् ।
श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥ १ ॥
अस्य हि स्वयशस्तरं सवितुः कच्चन प्रियम् ॥
न मिनन्ति स्वराज्यम् ॥ २ ॥

ऋ. ५।८२ ॥

"(१) (सवितुः देवस्य) उत्पादक ईश्वरके (तत् भोजनं) उस पोषणका (वृणीमहे) हम सब स्वीकार करते है, (२) तथा (भगस्य)

---

१ 'भोजन' शब्दका अर्थ–Food अन्न; nourishment पुष्टी, पोषक रस; enjoyment उपभोग, wealth धन, property धन गुण स्वभाव ।

भगवानके श्रेष्ठ तथा (सर्व-धा-तमं) सबका धारण करनेवाले (तुरं) विजयी शक्तिका हम सब (धीमहि) धारण करते है ॥ (हि) क्यों कि (अस्य सवितुः) इस उत्पादक ईश्वरके (३) (स्व-यशः-तरं) अपने यशसे फैले हुए (४) (प्रियं) प्रीति करने योग्य (स्व-राज्यं) स्वराज्यका (कच्चन न) कोई भी नहीं (मिनन्ति=विनाशयन्ति) नाश कर सकते हैं ॥ "

यहां 'स्व-राज्य' का अर्थ 'ईश्वर (आत्मा) का शासन' है । परमेश्वरके जो नियम इस सृष्टिमें कार्य कर रहे है, उनको कोई भी तोड नहीं सकता, क्योंकि वह परमेश्वरका स्वराज्य अपने यशसे फैला हुआ और सबको प्रीति करने योग्य है । इसलिये "जिस स्वराज्य पर सबकी प्रीति होती है, और जो अपने यशसे फैला हुआ होता है, उस स्वराज्यका नाश कोई भी नहीं कर सकता । " स्वराज्यकी स्थिरताके लिये चार बातोंकी आवश्यकता होती है, जो उक्त मंत्रमें कहीं हैः—(१) परमेश्वरके दिये हुए भोग्य पदार्थों पर सबका अधिकार, (२) विजयी उत्साहकी शक्तिसे सबका धारण, पोषण और वर्धन, (३) अपने यशसे अपना विस्तार तथा (४) सबका प्रेम, ये चार बाते जिस स्वराज्यमें होंगी वह स्वराज्य स्थिर और दृढ होगा । परंतु जिस राज्यमें (१) उपभोगोंके पदार्थों पर सबका समान अधिकार नहीं, (२) सबमें निरुत्साह होगा, (३) अपने यशकी जहां संभावना न होगी, (४) और जहां सबका परस्पर प्रेम न होगा; वहां राज्यकी स्थिरता नहीं हो सकती ।

तात्पर्य ' (१) समान उपभोग, (२) उत्साह शक्ति, (३) स्वकीय-यशकी आशा और (४) परस्पर प्रेम,' ये चार गुण राज्य स्थिरता करने-वाले हैं । तथा (१) उपभोगोंकी विषमता, (२) निरुत्साह (३) अपयश, (४) परस्पर द्वेष, ये दुर्गुण राज्यका नाश करनेवाले है । अस्तु

---

१ 'तुर' शब्दका अर्थ—Advancing बढना, promoting उच्च करना; strong, energetic शक्तिशाली, rich धनी, भाग्यवान; abundant विपुल; speed वेग, गति; overcome, conquering विजयशाली ।

उक्त मंत्रमें 'सविता देवके भर्ग' नामक उग्र तेजकी धारणा करना ध्वनित किया है। 'भर्ग' नामक तेज परमेश्वरका है, परंतु उस तेजका धारण मनुष्यको करना चाहिए। इस 'भर्ग' के सहचारी गुणोंका भी यहां विचार करना उचित है। देखिए:-

३३ वीर्य ।

इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन् भर्गो यशः सह
ओजो वयो बलम् ॥ त्रयस्त्रिंशद् यानि वीर्याणि
तान्यग्निः प्रददातु मे ॥ १ ॥ वर्च आ धेहि मे
तन्वां सह ओजो वयो बलम् ॥ इन्द्रियाय त्वा
कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि शतशारदाय ॥ २ ॥
ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा ॥ अभि-
भूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशार-
दाय ॥ ३ ॥

अथर्व. १९।३७ ॥

(अग्निना) तेजस्वी ईश्वरने (इदं वर्चः=Vigour) यह सामर्थ्य मुझे दिया है। उसके साथ निम्न गुण(आगन्) आगये है।(भर्गः—radiant purity) तेजस्वी पवित्रता, (यशः—glorious honour) सन्मानयुक्त कीर्ति, (सहः—power of endurance) स्थिरतापूर्वक सहन करनेकी शक्ति, (ओजः—vitality, virility) जीवन शक्ति, शारीरिक बल, (वयः— healthy life) आरोग्ययुक्त दीर्घ आयुष्य, (बलं—strength) बल, ये गुण उक्त 'वर्च' के साथ प्राप्त हुए हैं। जो (त्रयस्त्रिंशद् वीर्याणि) तेहतीस वीर्य हैं, परमेश्वर उनका मुझे प्रदान करे ॥ मेरे शरीरमें सामर्थ्य, सहनशक्ति, बल, वीर्य, दीर्घ आयु स्थिर होवे । इन्द्रियका कार्य, सत्कर्म, वीर्य अर्थात् पराक्रम और (शत-शारदाय) सौ वर्षोंकी दीर्घ आयुके लिये मैं तेरा स्वीकार करता हूं ॥ (ऊर्जे) तेजस्वी शक्तिके लिये, (बलाय) आत्मिक बलके लिये, (ओजसे) शारीरिक बलके लिये, (सहसे) सहनशक्तिके लिये

(अभि-भूयाय) शत्रुका पराजय करनेके लिये, (शत-शारदाय) सौ वर्षोंकी दीर्घ आयुके लिये तथा (राष्ट्र भृत्याय) राष्ट्रकी सेवा करनेके लिये मैं तेरा–अर्थात् उपभोगका–स्वीकार करता हूं॥"

इन मंत्रोंमें 'वर्च, भर्ग, यश, सह, ओज, दीर्घ-आयु, बल, ऊर्ज, अभिभव अर्थात् शत्रुका पराभव करनेकी शक्ति, राष्ट्र-सेवाका भाव ये दस गुण कहे हैं। 'भर्ग' के साथ ये रहते है, जिस भर्गकी उपासना गुरुमंत्रने कही है।

इस मंत्रमें ३३ वीर्योंका उल्लेख हुआ है। ३३ देवताओंकी ये ३३ शक्तियां हैं। अथर्व वेदने इन ३३ वीर्योंकी गणना की है:–

> ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक्चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च ॥ ७॥ ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं च॥ ८॥ आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ॥ ९॥ पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं चर्तं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च ॥ १०॥
>
> अथर्व. १२।५॥

(१ ओजः) शारीरिक बल, (२ तेजः) तेजस्विता, (३ सहः) सहनशक्ति, (४ बलं) आत्मिक बल, (५ वाक्) वाचाकी शक्ति, (६ इन्द्रियं) इंद्रियोंकी शक्तियां, (७ श्री) शोभा, (८ धर्मः) कर्तव्य-पालन करनेका स्वभाव, (९ ब्रह्म) ज्ञान, (१० क्षत्रं) शौर्य, (११ राष्ट्रं) राष्ट्रशक्ति, (१२ विशः) वैश्योंकी व्यापारकी शक्ति, (१३ त्विषिः Authority) अधिकारशक्ति, (१४ यशः) सन्मान, (१५ वर्चः) सामर्थ्य, (१६ द्रविणं) पैसा, धन, (१७ आयुः) दीर्घ आयु, (१८ रूपं) सौन्दर्य, सुन्दरता, (१९ नाम) नामका अभिमान, (२० कीर्ति) नेकनामी, प्रसिद्धि, (२१ प्राणः) जीवनशक्ति, (२२ अपानः) रोगनिवारक शक्ति, (२३ चक्षुः) सूक्ष्मदृष्टि, (२४ श्रोत्रं

proficiency in knowledge) ज्ञानमें प्रवीणता, (२५ पयः vital spirit) वीर्यका बल, (२६ रसः taste, love, feeling, elegance, essence,) रुचि, प्रेम, सहृदयता–हमदर्दी, सौंदर्य, सत्व; (२७ अन्नं अन्नाद्यं च) खान पान, (२८ ऋतं right) न्यायानुकूल यथायोग्य नियमपूर्वक बर्ताव, (२९ सत्यं sooth) सत्यता, (३० इष्टं) अपना हित, (३१ पूर्तं) जनहित, दूसरोंका भला करना; (३२ प्रजा progeny) संतति, (३३ पशवः cattle, un-initiated persons,) गाय, बैल, घोडा आदि पशु, अथवा अशिक्षित मनुष्य ॥

ये ३३ वीर्य हैं कि, जो 'भर्ग' नामक तेजके साथ रहते हैं। 'भर्ग' की उपासना करनेके समय तथा उसका चिंतन करनेके समय इनका भी चिंतन करना चाहिए। क्योंकि इनको छोडकर मनुष्यके पास 'भर्ग' नहीं आसकता, तथा 'भर्ग' को छोडनेसे ये ३३ वीर्य नही प्राप्त हो सकते।

प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि, वह इन वीर्योंको अपने पास करनेका प्रयत्न अहर्निश करे। इनमें कई शक्तियां अपने अंदर हि बढनेवाली हैं तथा कई बाहरसे प्राप्त होनेवाली है । पाठक इनका अधिक विचार करके अपना लाभ कर सकते हैं ।

अस्तु इस प्रकार 'भर्ग' का विचार करके इस मंत्रका विचार यहां हि समाप्त करके अगला मंत्र देखेंगे:–

मंत्र ३

(३) बुराईयोंको दूर करके, भलाइयोंको पास करना।

"हे उत्पादक ईश्वर ! सब बुराइयोंको हम सबसे दूर कराओ, तथा सब भलाइयोंको हम सबके पास कराओ । "

बुरे विचार, बुरी आदतें, बुरे कर्म, बुरी संगति आदि सबको दूर हटाना चाहिए, तथा अच्छे विचार, अच्छे कर्म, अच्छी संगति पास

करनी चाहिए। अपनी शुद्धिका यही मार्ग है और अपनी पवित्रता करनेसे हि उन्नति होती है।

"विश्वानि दुरितानि परा सुव"

'दुरित' शब्दका अर्थ विचार करने योग्य है। 'दु+इत' ये दो शब्द हैं। 'इतः का अर्थ—Gone, returned, obtained, remembered, attended by, course, mode of going, way, knowledge, (१) गत, (२) आगत, (३) प्राप्त, (४) चिंतन किया हुआ, (५) साथ रहा हुआ, (६) चालचलन, आचार, (७) मार्ग, (८) ज्ञान।

'दुः+इत=दुरित' का अर्थ—बुरी गति, बुरी अवस्था प्राप्त होना, कठिनता, दुर्गति, बुरा विचार मनमे लाना, दुष्टोंकी संगति करना, बुरा चालचलन और आचार करना, बुरे मार्गसे चलना, दुःखकारक तर्कवितर्क चलाना, बुरा उपदेश सुनना॥ Difficulty, sinful act, bad course, evil thought, sin; कठिनता, पापी आचार, बुरा मार्ग, बुरा विचार, पाप। इत्यादि भाव इस शब्दके हैं।

इस प्रकारके अवनतिकारक बुरे भावोंको दूर करना, और अच्छे भावोंको पास करना। प्रत्येकका पुरुषार्थ प्रयत्न इसी दृष्टीसे होना चाहिए। अब वेदमें बुराइयोंके विषयमें जिन जिन शब्दोंद्वारा उल्लेख किया है उनका थोडासा विचार करेंगेः—ऋग्वेद।

(१) दुराध्यः=(दुः+आध्य.)=निर्धनता, गरीबी, हीनता, दारिद्र्य।

(२) दुरापना=(दुः+आपन)=जीतनेके लिये कठिन।

(३) दुराव्य=(दुः+आव्य)=पार होनेकी कठिनता।

(४) दुरित=(इसका अर्थ ऊपर दिया है।)

(५) दुरुक्तं=(दुः+उक्त)=कठोर भाषण, अपमानकारक भाषण, निन्दा, दुःखदायक शब्द।

(६) दुरेवः=(दु.+एवः)=Having evil ways बुरा चाल-चलन, wicked person कुटिल मनुष्य, कुटिलता, तेढी चाल। criminal गुन्हेगार।

(७) दुरोकं=(दुः+ओकं)=Unpleasantly नापसंद, अ-समा-धान-कारक, जिसके आश्रयसे परिणाममें अहित होता है ॥

(८) दुष्कृतं=बुरा कर्म, पापी आचरण ।

(९) दुर्गं=कठिनता, विपरीत अवस्था ।

(१०) दुर्गृभिः=काबू करनेके लिये कठिन ।

(११) दुश्च्यवनः=हलचल करनेकी कठिनता ।

(१२) दुर्दर्शीकं=जिसका दर्शन बुरा है ।

(१३) दुर्धर्तवः=धारण करनेकी, स्वाधीन रखनेकी कठिनता ।

(१४) दुर्धा=Bad order, dis-arrangment बुरा हुकुम, बुरा शासन, अव्यवस्था ।

(१५) दुध्यी=दुष्ट विचार, दुष्टताका ध्यान करना ।

(१६) दुर्नामन्=बुरा नाम, अपयश, दुष्कीर्ति ।

(१७) दुर्नियन्तु=नियमन करनेके लिये कठिन, संयम करनेकी कठिनता ।

(१८) दुष्पदा=बुरा स्थान ।

(१९) दुर्भृतिः=खानपानकी न्यूनता, अकालकी अवस्था, भरण-पोषण न होनेकी हालत ।

(२०) दुर्मतिः=दुष्ट बुद्धि, बुरा विचार, मूर्खता, कुटिलता,

(२१) दुर्मदः=मूर्ख, क्रोधी, अविचारी ।

(२२) दुर्मन्मन्=बुरा मनवाला, बुरा विचार करनेवाला ।

(२३) दुर्मर्षः=Hostile बुरा, शत्रु, असह्य, दुराग्रही ।

(२४) दुर्मायुः=जिसका पित्त बिघडा है, पचन शक्तिका बिघाड, क्रोधी स्वभाव, दूसरेकी हानि करनेवाले कार्य करनेमें कुशल ।

(२५) दुर्मित्रः=शत्रु।

(२६) दुर्युजः=मिलने जोडने, संगति करनेके लिये बुरा।

(२७) दुर्वर्तुः=जिसका बर्ताव बुरा है। तेढी चाल चलनेवाला।

(२८) दुर्वासः=जिसके कपडे मलीन हैं।

(२९) दुर्विदत्रः=जिसका स्वभाव तथा विचार बुरा है।

(३०) दुर्विद्वांसः=जो अपने ज्ञानका बुरा उपयोग करता है।

(३१) दुःशंसः=बुरे कार्य करनेसे जो बदनाम हुआ है।

(३२) दुःशासुः=जिसका शासन बुरा है।

(३३) दुःशेवः=जो सेवन करनेके लिये अयोग्य है।

(३४) दुःस्वप्न्यं=जिससे बुरा स्वपन आता है। अजीर्ण आदि बुरे स्वप्नके कारण होते है। तथा कुविचार भी है।

यजुर्वेद।

(३५) दुरिष्टिः=यज्ञमें न्यूनता, अपूर्णता। अथवा विघ्न उत्पन्न करनेवाले होम हवन आदि।

(३६) दुरद्मन्=बुरा भोजन करना। अधिक अर्थात् पचन होनेसे अधिक भोजन करना।

(३७) दुश्चरितः=जिसका जीवन बुरा है।

(३८) दुष्टरः=तैरने पार होनेके लिये कठिन।

सामवेद।

(३९) दुरोणस्=बुरा बर्तन।

---

१ अच्छी हवन सामग्रीके हवनसे रोग निवृत्ति होती है परन्तु विपरीत पदार्थोंके हवनसे रोग उत्पन्न होते है। शत्रुओंके राज्यमे रोग उत्पन्न करनेके कई हवन भाष्यकारोने लिखे है॥

(४०) दुरोपस्=सुस्त, आलसी, निरुद्योगी ।

(४१) दुर्हृणायुः=क्रोधी ।

अथर्व वेद ।

(४२) दुर्गन्धीन्=दुर्गन्धयुक्त पदार्थ ।

(४३) दुर्गहं=आपत्ति-भीति-का स्थान ।

(४४) दुश्चित्तं=जिसका चित्त बुरा है । जो बुराईका चिंतन करता है ।

(४५) दुर्दार्शं=विनाश-अवनतिकारक बुरी अवस्था ।

(४६) दुष्प्रतिग्रहः=बुरे पदार्थका स्वीकार । बुरी रीतीसे किसी पदार्थका स्वीकार ।

(४७) दुर्भगः=बुरा धन । (भग शब्दका अर्थ पहिले दिया है । उस प्रत्येक अर्थके विरोधी भावका आशय यहां समझना)

(४८) दुर्भूतं=जिसकी उत्पत्ति बुरी है ।

(४९) दुर्वाचः=बुरा भाषण करना ।

(५०) दुर्हार्दः=जिसका हृदय बुरा है ।

(५१) दुर्हितः=जिसके हित करनेके प्रयत्नसे कार्य बिघडता है ।

इत्यादि अनेक दुरित हैं, इनमें कई व्यक्तिके दुर्गुण हैं तथा अन्य समाजके दुर्गुणी मनुष्य हैं । चारों वेदोंमें इतने नाम दुरितोंके आये हैं । इससे अधिक १०।१५ नाम है परंतु उनका भाव प्रायः ऊपर दिये हुए नामोंमें आ चुका है । इसलिये उनके नाम यहां दिये नहीं । यहां कोई यह न समझे कि इतने हि दुरित है । दुरितोंकी गिनती नहीं हो सकती । किसी समय विपरीत विचार, विपरीत भाषण, अथवा विपरीत आचरण करना दुरित होता है । इस प्रकारके सब दुरितोंको दूर करनेसे उन्नतिका मार्ग आक्रमण करना सुगम होता है । अस्तु । अब अथर्ववेदके अन्दर बुरे भावोंसे बचनेके विषय में एक सूक्त है वह यहां देखने योग्य हैः—

पाप संकल्पको दूर करना।

परोपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि ॥
परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि संचर गृहेषु
गोषु मे मनः ॥ १ ॥ अवशसा निःशसा यत्
परा शसोपारिम जाग्रतो यत्स्वपन्तः ॥ अग्निर्वि-
श्वान्यप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे अस्मद्दधातु ॥ २ ॥
यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽपि मृषा चरामसि ॥ प्रचेता
न आंगिरसो दुरितात्पात्वंहसः ॥ ३ ॥

अथर्व ६।४५ ॥

"(१) हे (मनस्पाप) मनके पाप-संकल्प ! (परोपेहि) दूर हो जाओ। (२) क्यों (अशस्तानि) अप्रशस्त-अयोग्य-बात कहते हो (३) (परेहि) दूर हो, (त्वा न कामये) तुमको मै नहीं चाहता। (४) जाओ वनमें जहां केवल वृक्ष रहते हैं। (५) मेरा मन अपने घरमें लगा है, तथा (गोषु) अपने इन्द्रियोंके विषयमें मैं सोच रहा हूं ॥ (६) जागते हुए अथवा स्वप्नमें जो पाप हमने (अव-शसा) बुरी इच्छासे, (निः-शसा) बुरी कल्पनासे अथवा (परा-शसा) बुरी अवस्थाके कारण किये हों; (अ-जुष्टानि) जो निन्दनीय दुराचार हुए हों; उन सबके कारणोंको परमेश्वर हम सबसे दूर करे ॥ हे प्रभो ! ज्ञानके स्वामिन् ! (७) जो (मृषा चरामसि) झूटे कर्तूत हमारेसे हुए हों, उन सब पापोंसे (प्र-चेताः) विशेष बुद्धिवान् ज्ञानी, हम सबको बचावे ॥

इन मंत्रोंमें मनको दुरितोंसे बचानेकी रीति बताई है। जब किसी समय मनमें बुरे विचार आने लगेगे तब मनको सावधान करके कहना चाहिए कि, "खबरदार ! हे मन ! मेरे पास इस प्रकारके बुरे विचार फिर न ले आओ । क्या मुझे तूं दुराचरणमें प्रवृत्त करता है। मैंने तुम्हारी तेढी बात सुननी नही है । ध्यान रखो । मैं अपनी उन्नतिकेलिये अपने विचारोंको एकत्रित करना चाहता हूं। और तुम मुझे बुराईमें ले जाना चाहता है। स्मरण रखो। मै अपने धार्मिक विचारों पर हि दृढ रहूंगा। जागते हुए अथवा सोते हुए जो कुछ पाप मेरेसे हुआ हो

उस प्रकारका दुष्कृत दुबारा न करनेके लिये मैंने अब दृढ निश्चय किया है । और जहांतक मेरा प्रयत्न चलेगा, वहांतक मैं दुबारा पापका आचरण कभी नहीं करूंगा । हे मन ! तू कितना भी प्रलोभन बताओ । मैं बुरे विचारोंको दूर हि रखूंगा ॥ " इस प्रकारकी दृढता धारण करके मनके बुरे भावो को रोकना चाहिए । इस प्रकार वारंवार रोकने से मनमें फिर कुसंस्कार नहीं उत्पन्न होते । इसी प्रकार और एक मंत्र देखिए:—

मनुष्योंके छे शत्रु ।

उलूक-यातुं शुशुलूक-यातुं जहि श्व-यातुमुत कोक-यातुम् ॥
सुपर्ण-यातुमुत गृध्र-यातुं दृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र ॥

ऋ. ७।१०४।२२ अथर्व. ८।४।२२ ॥

"(सुपर्ण-यातुं) गरुडके समान चालचलन अर्थात् घमंड, गर्व, अहंकार, (गृध्र-यातुं) गीधके समान बर्ताव अर्थात् लोभ, दूसरेके मांस पर स्वयं पुष्ट होनेकी इच्छा, (३ कोक-यातुं) चिडियोंके समान व्यवहार अर्थात् अत्यन्त कामविकार, (४ श्व-यातुं) कुत्तेके समान रहना अर्थात् आपसमें लडना और दूसरोंके सामने दूम हिलाना, (५ उलूक-यातुं) उल्लूके समान आचार अर्थात् मूर्खताका व्यवहार करना, उल्लु जिस प्रकार प्रकाशसे भागता है उस प्रकार ज्ञानकी रोशनीसे भाग जाना, (६ शुशुलूक-यातुं) भेडियेके समान क्रूरता ये छे राक्षस हैं । गर्व, लोभ, काम, मत्सर (Jealousy), मोह और क्रोध ये छे विकार हैं जिनको (दृषदा इव) जैसे पत्थरसे पक्षियोंको मारते है उस प्रकार इनको पत्थरके समान दिल दृढ करके दूर करो और इनसे सबको बचाओ ॥ "

इस प्रकार वेद्का मंगल उपदेश है, जो प्रत्येकको ध्यानमें धरना उचित है । यदि इस अपूर्व ज्ञानका संदेशा प्रत्येक आत्मातक पहुंचाया जायगा तो यही पृथ्वी स्वर्गधाम बनेगी और यही मृत्युलोक सच्चा देवलोक बन जायगा ! !

इस प्रकार बुराइयोंको दूर करनेका उपदेश है । बुराइयोंका चिंतन सदा

नहीं करना चाहिए और न किसीसे बुराई की बात सुननी चाहिए, परंतु अपनी परीक्षा करके अपनी बुराइयोंको हटा कर, अपने अंदर उत्तम श्रेष्ठ सद्गुणोंको लानेका यत्न प्रतिसमय करना चाहिए। व्यक्तिमें बुरे दुर्गुण होते हैं और समाजमें दुर्जन होते है। जैसा व्यक्तिमें क्रोध और समाजमें क्रोधी मनुष्य है। दोनोंको दूर रखना चाहिए। इसी प्रकार अन्य दुर्गुणों तथा दुर्गुणियों के विषयमें समझना।

"यद्भद्रं तन्न आसुव।"

"जो कल्याणकारक है उसको अपने पास करो।" बुराइयोंकी गिनती ऊपर की है, उनके विरुद्ध भावोंकी कल्पना करने से भलाइयोंकी कल्पना हो सकती है। परंतु वेदके शब्दोंसे हि थोडे सद्गुणोंकी गिनती यहां करता हूं:—

ऋग्वेद।

(१) सु+अंगः (स्वंगः)=अपना शरीर सुदृढ तथा सुन्दर बनाना, अपने इंद्रियोंको बलवान, सुंदर और सुशिक्षित करना।

(२) सु+अंच (स्वंचः)=एक होकर, समुदाय अथवा संघ बना कर उच्च बननेके लिये अच्छे मार्गसे चलना।

(३) सु+अध्वरः (स्वध्वरः)=हिंसारहित उच्च कर्म करना।

(४) सु+अनीकं (स्वनीकं)=उत्तम संघ बना कर दुष्टोंके संहार के लिये युद्ध करना।

(५) सु+अपत्यं (स्वपत्यं)=उत्तम संतान उत्पन्न करना।

(६) सु+अपसः (स्वपसः)=उत्तम व्यापक कर्म करना।

(७) सु+अप्नस् (स्वप्नस्)=उत्तम स्वार्थत्याग-परोपकार-करना।

(८) सु+अभिष्टिः (स्वभिष्टिः)=उत्तम श्रेष्ठ इच्छा धरना।

(९) सु+अभीशुः (स्वभीशुः)=उत्तम तेजस्वी होना।

(१०) सु+अरंकृतः (स्वलंकृतः)=उत्तम अलंकार, उत्तम वस्त्र आदि से सुशोभित होना।

(११) सु+अरिः (स्वरिः)=Good aspirations उत्तम सत्यमय प्रबल इच्छा ।

(१२) सु+अर्थः (स्वर्थः)=उत्तम अर्थकी इच्छा । उत्तम पुरुषार्थ ।

(१३) सु+अवः (स्ववः)=रक्षण, पालन, और संवर्धनकी उत्तम शक्ति धारण करना ।

(१४) सु+अश्वः (स्वश्वः)=घोडे आदि गतिमान उत्तम प्राणी अपने पास रखना ।

(१५) सु+अष्ट्रः (स्वष्ट्रः)=उत्तम खानपान करना ।

(१६) सु+अरि+त्र (स्वरित्र)=चारों ओरके शत्रुओंसे सब प्रकारकी रक्षा करना ।

(१७) सु+आध्यः (स्वाध्यः)=धनधान्यसे युक्त होना ।

(१८) सु+आ-भुवः (स्वाभुवः)=सबसे अधिक उत्तम शक्तिमान होना ।

(१९) सु+आयसः (स्वायसः)
(२०) सु+आयुधः (स्वायुधः) } =उत्तम शस्त्रास्त्र तैयार रखना ।

(२१) सु+आवेशः (स्वावेशः)=उत्तम उत्साह, Devotedness

(२२) सु+आशिषः (स्वाशिषः)
(२३) सु+इष्टं (स्विष्टं) } =उत्तम इच्छा करना ।

(२४) सु+उक्तं (सूक्तं)=उत्तम भाषण करना ।

(२५) सु+उप+स्थानं (सूपस्थानं)=ईश्वरकी उत्तम उपासना करना ।

(२६) सु+उप+आयनं (सूपायनं)=उत्तम शिष्य होकर उत्तम विद्याध्ययन करना । सब कार्य अच्छी प्रकार करना ।

(२७) सु+ऊतिः (सूतिः)= उत्तम संरक्षण करना ।

(२८) सु+ओजः (स्वोजः)=उत्तम बल धारण करना ।

(२९) सु+कर्म=उत्तम कर्म करना।

(३०) सु+कीर्तिः=उत्तम यश संपादन करना।

(३१) सु+कृतं=उत्तम उद्योग, पुण्यकारक कर्म करना।

(३२) सु+केतुः=उत्तम ज्ञान प्राप्त करना।

(३३) सु+क्षत्रः=उत्तम शौर्य धारण करना।

(३४) सु+क्षयः=उत्तम घर में निवास करना।

(३५) सु+क्षितिः
(३६) सु+क्षेत्रं } =उत्तम भूमि पर वास्तव्य करना।

(३७) सु+खं=इंद्रियोंको उत्तम बलवान बनाना।

(३८) सु+गो+पः=इंद्रियोंका उत्तम रक्षण करना।

(३९) सु+चेतस्=उत्तम चित्त धारण करना।

(४०) सु+जिह्वः=उत्तम जबान धारण करना।

(४१) सु+दंसस्=दांतोंको उत्तम रखना।

(४२) सु+दक्षः=प्रत्येक कर्ममें उत्तम दक्षता रखना।

(४३) सु+दक्षिणः
(४४) सु+दाः
(४५) सु+दातुः } =उत्तम दान देना।

(४६) सु+दशीक+रूपः=अपना स्वरूप दर्शनीय अर्थात् सुन्दर बनाना।

(४७) सु+द्रविणः=उत्तम धन प्राप्त करना।

(४८) सु+धन्वा=उत्तम धनुष्य आदि शस्त्रास्त्र रखना।

(४९) सु+धुरः=लोकोंका नेतृत्व (Leader-ship) करना।

(५०) सु+नीतिः=उत्तम न्यायानुकूल कर्तव्य करना।

(५१) सु+पत्नीः=उत्तम पत्नी।

(५२) सु+पथः=उत्तम मार्गसे चलना ।

(५३) सु+पुत्रः=उत्तम पुत्र उत्पन्न करना ।

(५४) सु+बाहुः=बाहुओंको उत्तम बलवान बनाना ।

(५५) सु+मनः=उत्तम मन बनाना ।

(५६) सु+मेधः=उत्तम बुद्धिको धारण करना ।

(५७) सु+यमः=उत्तम यमनियमोंका पालन करना ।

(५८) सु+वाचः=उत्तम भाषण करना ।

(५९) सु+वासाः=उत्तम कपडे लत्ते धारण करना ।

(६०) सु+विप्रः=उत्तम ज्ञानी होना ।

(६१) सु+वीरः=उत्तम शूर होना ।

(६२) सु+वीर्यं=उत्तम वीर्यको धारण करना ।

(६३) सु+वृत्
(६४) सु+व्रतं } =उत्तम वर्ताव करना ।

(६५) सु+शरणः=दूसरोंको उत्तम आश्रय देना ।

(६६) सु+शेवः=सेवा करने योग्य बनना ।

(६७) सु+श्रुतः=उत्तम ज्ञानसे संपन्न होना ।

(६८) सु+सखा=उत्तम मित्र बनना ।

(६९) सु+सूदः=Good cook, अन्न पकानेकी विद्या उत्तम जानना ।

(७०) सु+हस्तः=उत्तम हाथ धारण करना ।

(७१) सु+शर्मा=उत्तम नाम धारण करना ।

(७२) सु+शिल्पः=उत्तम कारीगरी का काम करना ।

इस प्रकार सहस्रों सद्गुणोंकी गिनती वेदमंत्रोंमें की है । सबका केवल

नाम भी लिखना हो तो निःसंदेह हजारसे ऊपर गिनती पहुंच जायगी। यहां नमूनेके लिये बहुत ही थोडे नाम दिये हैं। जिससे पाठक कल्पना कर सकते है अथवा वे स्वयं वेद में देख सकते हैं। ये 'भद्र' गुण हैं जो सदा पास करने चाहिए। भद्रके विषयमें यहां एक मंत्र देखने योग्य है:—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः॥
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥

ऋ. १।८९।८॥ यजु. २५।२१॥

"हे विद्वानो! हम सब अपने कानोंद्वारा कल्याणकारक उपदेश हि सुनें। हे सत्कर्मकर्ता। हम सब आंखोंद्वारा कल्याणकारक पदार्थ हि देखें। जबतक हमारा आयु है, तबतक सब अवयवोंको स्थिर और दृढ बनाते हुए; तथा सद्गुणोंकी स्तुति करते हुए अपने शरीर द्वारा श्रेष्ठोंका हित करते रहेंगे।"

इस प्रकार अनेक मंत्र हैं। परंतु उनको यहां धरनेके लिये स्थान नहीं है। आशा है कि, दुर्गुणोंको परे और सद्गुणोंको पास करके, सब लोक, मिलकर अपनी उन्नति और अभ्युदय करनेका बडा पुरुषार्थ करेंगे। अब इस उत्तम मंत्रका इतनाहि विचार करनेके पश्चात्, इसको यहां हि छोड कर, अगला मंत्र देखेंगे:—

मंत्र ४

(४) धनके विभागकी प्रशंसा।

"उत्तम स्वास्थ्यके सब उत्कृष्ट साधनोंका उत्तम विभाग जिसने किया है, जो सब मनुष्योंको सच्चा उपदेश करता है और जो सबको सत्कर्मकी प्रेरणा करता है, वह प्रशंसाके लिये योग्य है।"

पूर्वोक्त तीन मंत्रोंद्वारा मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिके सामान्य नियमोंका वर्णन करनेके पश्चात्, इस चतुर्थ मंत्रसे 'धनका वि-भाग (Distribution of wealth)' नामक विशेष पद्धतिका वर्णन किया जाता है।

'वसु' शब्दका अर्थ 'निवास हेतु' अर्थात् 'जिससे मनुष्योंका उत्तम निवास' होता है। जिस साधनसे मनुष्योंका इस जगतमें रहना सहना ठीक प्रकारसे हो सकता है उसका नाम 'वसु' है। 'वस्-निवासे' इस धातुसे 'वसु' शब्द बनता है। यह यौगिक अर्थ है। परंतु इसका साधारण अर्थ धन है। ये धन निम्न प्रकारके होते हैं।—

"वि-भक्तारं हवामहे"

(१) ब्राह्मणोंका धन विद्या अथवा ज्ञान है। (Knowledge).

(२) क्षत्रियोंका धन शौर्य और राज्याधिकार है। (Military heroism, rule, government)

(३) वैश्योंका धन व्यापार और पैसा है। (Commerce & money)

(४) शूद्रोंका धन कारीगरी और शारीरिक मेहनत है। (Arts, crafts & labour)

ये चारोंके चार धन हैं। इनको इसलिये 'वसु' कहते हैं कि, इनके कारण इन चार वर्णोंकी स्थिति है, तथा इनके विभागसे सब मनुष्योंका पृथ्वी परका निवास उत्तमता से होता है। (Division of labour) श्रम-विभागका पहिला तत्व जो इस चातुर्वर्ण्यकी व्यवस्थामें दिखाई देता है, वह समाजशासन की दृष्टीसे बडा प्रशंसाके लिये योग्य है।

यह 'वसु' संज्ञक राष्ट्रीय धन आठ प्रकारका बन कर राष्ट्रमें संचार करता है। (१) अध्ययन (२) अध्यापन द्वारा ब्राह्मणोंका ज्ञान सब लोकोंमें प्रसारको प्राप्त होता है। (३) स्वयं वीर्यवान् बनना और (४) दूसरोंकी रक्षा करना। इससे क्षत्रियोंका शौर्य सब लोकोंको सुरक्षित रखता है। (५) स्वयं धन प्राप्त करके (६) दानद्वारा अच्छे कार्योंमें उसका अर्पण करनेसे धनका यज्ञ होता है, जिसको भगवद्गीतामें 'द्रव्य-यज्ञ' कहा है। (७) स्वयं कुशल कारीगर बनकर (८) कारीगरीका प्रचार करनेसे सब देश संपन्न होता है॥ वसु प्राप्त करनेके चार मार्ग

और वसुको फैलानेके चार मार्ग मिलकर आठ विभागों द्वारा यह वसु राष्ट्रमें कार्य करता है। इन चार वर्णोंके चार यज्ञ होते हैं जिनसे सब जनताका धारण, रक्षण, पोषण, संवर्धन, और विकास होता है। इन यज्ञोंका उल्लेख श्रीकृष्णने भगवद्गीतामें किया हैं:—

ब्राह्मण	ज्ञान	ज्ञानयज्ञ ...	ज्ञानदान ...	उपदेशद्वारा कार्य
क्षत्रिय	शौर्य	शरीरयज्ञ ...	बलिदान ...	रक्षणद्वारा ,,
वैश्य	धन	द्रव्ययज्ञ ...	द्रव्यदान ...	द्रव्यद्वारा ,,
शूद्र	कौशल्य ...	श्रमयज्ञ ...	सेवादान ...	सेवाद्वारा ,,

इस प्रकार यह श्रमका विभाग है। जिसने यह उत्तम विभाग किया है वह सचमुच प्रशंसाके लिये योग्य है।

"वसोः चित्रस्य राधसः।"

'राधस्' के अर्थ—Accomplishment परिपूर्णता, पराक्रम, पूर्ण साधन, सिद्धि, success विजय, अभ्युदय, उन्नति॥

'चित्र' के अर्थ—Bright तेजस्वी, शुद्ध, निश्चित, wonderful आश्चर्यकारक, विलक्षण, excellent सर्वोत्कृष्ट॥

उक्त अर्थ ध्यानमें धरकर उक्त वाक्यका अर्थ "तेजस्वी, शुद्ध, विलक्षण और सर्वोत्कृष्ट पराक्रमयुक्त अभ्युदयकारक परिपूर्ण सिद्धिका यह पूर्वोक्त वसु संज्ञक धन है।" जिसका विभाग पूर्व स्थलमें बताया जा चुका है।

चार वर्णोंमें चार शक्तियां स्थापित होने पर भी किसी स्थान पर 'शक्तिका केंद्रीकरण'(Centralization of powers) नहीं होना चाहिए यह उपदेश इस मंत्रने किया है। (decentralization of powers)। 'शक्तिका योग्य विभाग' वेदको अभीष्ट है। यह अधिकारका विभाग किस प्रकार करना चाहिए, इसका वर्णन ५ वें मंत्रसे अध्यायसमाप्तितक किया गया है।

ब्राह्मण (Civilians), क्षत्रिय (military people), वैश्य (traders), शूद्र (craftsmen & labourers) इन चार विभागोंमें सब नागरिक जनता विभक्त हुई है। राष्ट्रमें ज्ञानविभाग (educational department) का कार्य ब्राह्मणों अर्थात् ज्ञानियोंके पास रखा गया; शौर्यविभाग (military & police department) का कार्य क्षत्रियों अर्थात् वीरोंके पास आ गया; व्यापारविभाग (department of commerce) का कार्य वैश्यों अर्थात् बनियोंके पास हो गया और कलाविभाग (department of arts and crafts) का सब कार्य शूद्रों अर्थात् कारीगरोंके पास आ गया। इस चतुर्थ विभागमें मजदूर पेशाके लोक (labourers) भी संमिलित हैं।

उक्त चार विभागोंके अंदर भी असंख्य छोटे छोटे विभाग अपने अपने कार्य करनेके लिये पूर्ण स्वतंत्र, परंतु राष्ट्रीय कार्यके लिये सब एकत्र बंधे हुए बनाये गये हैं। जिनका वर्णन इस अध्यायके समाप्तितक होनेवाला है। जिस 'वसु-विभाग' अथवा 'अधिकार-विभाग (De-centralization of powers) किंवा 'शक्ति-विभाग' की प्रशंसा इस मंत्रमें की है, और 'शक्तिके केंद्रीकरण' (centralization of powers) की कण्ठरवसे निन्दा की है, उसका विचार अगले मंत्रसे करेंगे।

मंत्रके दो शब्द शेष रहे हैं। 'सविता' शब्द 'प्रेरणा अथवा उत्साह देनेका भाव' बताता है। 'सु-प्रसवैश्वर्ययोः' इस धातुसे यह शब्द बना है। ऐश्वर्यकी ओर जानेकी प्रेरणा अथवा ऐश्वर्य प्राप्तिके लिये उत्साह देना चाहिए। राष्ट्रमें नेता लोकोंका हमेशा ऐसा उपदेशका कार्य होना चाहिए कि, जिससे राष्ट्रके जनताका उत्साह नष्ट न हो सके। लोकोंका उत्साह कायम रखना ही राष्ट्रके धुरीणोंका कार्य है।

'नृ-चक्षसं' शब्दका अर्थ भी बडा उच्च है। 'चक्षस्' का अर्थ— Teacher शिक्षक, instructor उपदेशकर्ता, spiritual teacher आध्यात्मिक ज्ञानका प्रवचन करनेवाला। अर्थात् 'नृ-चक्षस्' का अर्थ 'लोकोंको उपदेश करनेवाला' है। 'नृ' शब्दसे सब जनता का बोध है। सबको शिक्षण देना चाहिए, किसीको भी शिक्षासे विमुख

नहीं रखना। 'नृ-चक्षण' का अर्थ 'मनुष्यमात्रकी शिक्षा (Education for all people)' ऐसा है। परमात्मा सबको एक जैसा उपदेश देता है, इसलिये पूर्णतया उसको 'नृ-चक्षस्' कहते हैं, तथा जो शासन-कर्ता सबको 'आवश्यक शिक्षा' (compulsory eductation) देगा, उसकी भी पदवी 'नृ-चक्षस्' हि होगी। क्योंकि जो कार्य परमेश्वर अपने स्वभावसे कर रहा है, वही हम सबको ज्ञानपूर्वक बडे प्रयत्नके साथ करना चाहिए। तभी मनुष्य मुक्ति (freedom) अर्थात् स्वातंत्र्यके भागी होंगे।

अब चारों वर्णोंकी समानताके विषयमें वेदका उपदेश देखिए, जिससे पता लग जायगा, कि उक्त वर्णोंमें साधारणतया न्यूनाधिकता नहीं रखी है।:—

चारों वर्णोंका तेज।

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुच॑ राजसु नस्कृधि ॥
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥

यजु १८।४८ ॥

"हमारे ब्राह्मणोंमें तेज रखो, हमारे क्षत्रियोंमें तेज रखो, हमारे वैश्यों और शूद्रोंमें तेज रखो तथा मेरे अंदर तेजसे तेजस्विता रखो।" तथाः—

आ ब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् ॥ आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् ॥ दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम् ॥ निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु ॥ फल-वत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् ॥ योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

यजु. २२।२२॥

"हे (ब्रह्मन्) परमेश्वर! (राष्ट्रे) हमारे राष्ट्रमें ब्राह्मण ज्ञानतेजसे युक्त हों, क्षत्रिय लोक शूर महारथी और अच्छे शस्त्रास्त्रोंसे युक्त हों, तथा हमारे

राष्ट्रमें दूध देनेवालीं गौवें, अच्छे बैल, चपल घोडे, विद्वान् स्त्रियां हों, तथा इस यज्ञकर्ताका पुत्र शूर विजयी, सभामें चमकनेवाला होवे। योग्य समयपर पर्जन्य पडता रहे। वृक्षवनस्पतियां फलोंसे भरपूर होवें। तथा हम सबका योगक्षेम अच्छा चलता रहे।"

इमा याः पञ्च प्रदिशो मानवीः पञ्च कृष्टयः॥
वृष्टेः शापं नदीरिवेह स्फातिं समावहन्॥

अथर्व. ३।२४।३॥

"जो इन पांच दिशाओंमें पांच प्रकारके (कृष्टयः) उद्यमशील (मानवीः) मनुष्य हैं, वे सब, जिस प्रकार वृष्टिसे नदी बढती है उस प्रकार, उन्नतिको प्राप्त हों।" विद्वान्, शूर, व्यापारी, कारीगर और अज्ञानी ऐसे पांच प्रकारके लोक होते है वे सब उन्नत हों। कोईभी अवनत न रहे।

अस्तु इस प्रकार सबकी उन्नति होनेकी कल्पना वेदमें है। राष्ट्रमें जितने लोक होंगे, उनमें एकमत चाहिए इस विषयके लिये निम्न मंत्र देखीए:—

असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु॥ नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः॥

अथर्व. १२।१।२॥

"(यस्याः) जिस हमारी भूमीके (मानवानां मध्यतः) मनुष्योंके बीचमें (अ-संबाधं) अ-द्वेष अर्थात् झगडा, आपसकी लडाई नहीं है। और जिस हमारे देशके (उद्वतः) आध्यात्मिक उन्नति करनेवाले तथा (प्रवतः) ऐहिक उन्नति करनेवाले सब लोकोंमें (बहु समं) बहुत समता अर्थात् समानता है, और जो हमारी भूमि नानाप्रकारके गुणधर्मवाली औषधियोंको धारण करती है वह हमारी भूमी (नः प्रथतां) हम सबकी प्रसिद्धि (राध्यतां) सिद्ध करे।"

राष्ट्रके सब लोकोंमें 'अ-संबाध' अर्थात् अद्वेष चाहिए। किसी प्रकारका झगडा नहीं होना चाहिए। जातियोंमें परस्पर विषमता होनेके कारण झगडे उत्पन्न होते हैं। जन्मसे एक उच्च और दूसरा नीच है, इस प्रका-

रका विषमताका क्षुद्र भाव जहां होगा वहां अवश्य झगडा रहेगा । सब लोकोंके अधिकार समान चाहिए तथा उन्नत होनेके लिये सबको एक जैसी सुभिता होनी चाहिए । अर्थात् सबके अंदर 'बहु समं' अर्थात् 'बहुत समता' चाहिए । समतासे सब झगडे मिटजाते है । विषमतासे सब झगडोंकी उत्पत्ति है ।

अस्तु । इस प्रकार अधिकार-विभागका महत्त्व तथा समभावकी योग्यता इस मंत्रसे जाननेके पश्चात् 'वसु-विभाग' का विचार अगले मंत्रसे करेंगेः—

मंत्र ५ से २२ तक

"वसु-वि-भाग ।"

(१) ब्राह्मण-वर्ण-विभाग ।

ज्ञानका प्रचार·

(Educational department)

मंत्र ५ से मंत्र २२ तक अर्थात् अध्याय समाप्तितक 'वसु-विभाग' का वर्णन किया जाता है । मंत्रमें जो इसका क्रम रखा है, वह किसी अन्य तत्वपर होगा, उसके विषयमें सबकोहि विचार करना चाहिए । यहां वेहि विभाग चार वर्णोंमें बांट कर बताये जाते है, जिससे उन विभागोंकी परस्पर संगति निश्चित रीतीसे समझी जायगी । सबसे प्रथम 'ब्राह्मणवर्ग' का विचार करेंगें, क्यौंकि 'ब्राह्मणो अस्य मुखं' ब्राह्मण इसका मुख है' ऐसा. अ. ३१।११ में कहा है । इस वसु विभागको प्रारंभ करनेसे पूर्व 'आलभते' इस क्रियाके अर्थका विचार करना चाहिए । क्यौंकि यद्यपि यह क्रिया मंत्र २२ में आती है, तथापि इसका संबंध पांचवे मंत्रसे अंततक प्रत्येक वाक्यके साथ होता है ।

आ-लभ्=To touch स्पर्श करना; to get प्राप्त करना; to attain to पाना, पहुंचाना, पूरा करना, सिद्ध करना; to take hold of आश्रय करना; to handle उपयोग करना, सलूक करना; to gain लाभ उठाना, to win प्राप्त करना; to commence आरंभ करना; to under-take अपने ऊपर लेना, स्वीकार करना; to reach पहुंचना; to obtain प्राप्त करना; to conciliate प्रसन्न करना, सुलह करना;to sacrifice अर्पण करना; to kill हनन करना; to approach पास होना।

आ-लम्ब्=To lay hold आश्रय करना; to rest upon विश्राम करना; to support सहायता करना, पालना करना; to appropriate अपना करना, उपयोग करना; to bring near, to get पास होना, प्राप्त करना; to give one's self to अपने आपको समर्पित करना; to depend अवलंबन करना।

लभ्=(डु-लभ-ष्)=प्राप्तौ। (पाणिनीये धातुपाठे भ्वादिः)

लम्ब्=(लबि)=शब्देऽवस्रंसने च। (" " ")

धातुके उक्त अर्थ देखनेसे उनमें केवल चार भाव प्रतीत होते हैं। (१) प्राप्ति, (२) आश्रय, (३) सहाय्य, और (४) हनन। ये चार अर्थ 'आलभते' क्रियामें मुख्य हैं। इन अर्थोंको मनमें धारण करके मंत्र ५ के प्रथम अंशका विचार करेंगेः—

(१) "ब्रह्मणे ब्राह्मणं आलभते" [१]

"(ब्रह्मणे) ज्ञानके लिये (ब्राह्मणं) ज्ञानीको (आलभते) प्राप्त करता है।" ज्ञानके लिये ब्राह्मणके पास पहुंचता है, ब्राह्मणका आश्रय करता है, ब्राह्मणसे उपयोग लेता है, ब्राह्मणसे सलूक करता है, ब्राह्मणसे लाभ उठाता है, ब्राह्मणका स्वीकार करता है, अथवा ब्राह्मणको अपने ऊपर मानता है अर्थात् ब्राह्मणको गुरु मानकर उसका शिष्य बनता है, ब्राह्मणके पास पहुंचता है, ब्राह्मणको प्रसन्न करता है, ब्राह्मणके साथ सुलह

अर्थात् मित्रता करता है, ज्ञानप्रसारके लिये ब्राह्मणको अर्पण करता है, ब्राह्मणको सहाय्यता देता है।

'हनन' का अर्थ यहां नहीं लगता, क्योंकि 'ज्ञानप्रसारके लिये ब्राह्मणका—अर्थात् ज्ञानीका—हनन करता है।' यह अर्थ स्वयं अपने मतव्यकाहि खंडन करनेवाला होता है। ज्ञानी जीता रहेगा तबतकहि ज्ञानका प्रसार होना संभवनीय है, ज्ञानी पुरुषका हनन करनेसे ज्ञानके प्रसारका कार्य बंद होगा। इसलिये ऐसे स्थानोंपर 'आलभ्' का 'हनन' अर्थ नहीं लिया जा सकता। किन किन स्थानोंपर लेना उचित होगा, उसका, जहां वैसा प्रसंग आवेगा वहां विचार किया जायगा।

अब 'ब्रह्म' शब्दका अर्थ देखना चाहिए। 'ब्रह्म' शब्द 'बृह्, बृंह्' इन दो धातुओंसे बनता है। जिनके अर्थ निम्न प्रकार हैं:—

बृह्=To grow बढना, अभ्युदयको प्राप्त होना; to increase वृद्धि करना, to expand फैलना, व्यापना; to grow great, strong बडा होना, बलवान् होना; to promote उच्च करना; to nourish पुष्टि करना।

बृंह्=To grow बढना; to nourish पुष्ट करना; to speak बोलना, उपदेश करना; to shine तेजस्वी होना, प्रकाशना।

बृह्=वृद्धौ। (पाणिनीये धातुपाठे भ्वादिः)=बढना।

बृह्=वृद्धौ शब्दे च। (" ")=बढना, बोलना।

बृह्=उद्यमने। (" तुदादिः)=To work उद्योग करना, उक्त अर्थोंको मनमें धारण करके 'ब्रह्मन्' का अर्थ देखना चाहिए। 'ब्रह्मन्' शब्दका यौगिक अर्थ—'बडा, महान्, अभ्युदय-संपन्न, व्यापक, फैला हुआ, बलवान्, उच्च, पुष्ट, उपदेशकर्ता, तेजस्वी, उद्यमशील' इतना है। अर्थात् 'ब्रह्मणे ब्राह्मणं आलभेत।' का अर्थ—"बडा होनेके लिये, महत्व प्राप्त करनेके लिये, अभ्युदय प्राप्तिके लिये, बलवान बननेके लिये, उच्च होनेके लिये, यश फैलानेके लिये, पुष्ट होनेके लिये, उपदेश करने और सुननेके लिये, तेजस्वी होनेके लिये, प्रयत्नशील—पुरुषार्थी—बननेके लिये ज्ञानी

मनुष्यको प्राप्त करो, ज्ञानी मनुष्यका शिष्य बनो । अथवा उक्त कार्य करनेके लिये ज्ञानीको नियुक्त करो, ज्ञानीको सहायता दो इ० ।" हो सकता है । इस विषयमें पाठकोंको अधिक विचार करके बोध लेना चाहिए । (for knowledge appoach or appoint a learned man)

राष्ट्रमें अज्ञानी, लोक ज्ञानी मनुष्यके पास चले जाय और ज्ञान प्राप्त करें; तथा धनिक और राजा, राजपुरुष आदि लोक ज्ञानीको सहायता करके उनसे ज्ञान प्रचार करनेका यत्न करावें । इस प्रकार दोनों प्रकारके लोकोंद्वारा ज्ञानप्रचारके लिये सहायता होनी चाहिए:—

तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

तैत्ति० आर. ८।१।१॥

"(नौ) हम दोनों द्वारा (अधीतं) पढा हुआ ज्ञान (तेजस्वि) तेजस्वि रहे । और हम सब आपसमें विद्वेष अर्थात् विरोधी झगडा न करें ।" उच्च नीच, श्रीमान् गरीब, धनिक निर्धन, अधिकारी अधिकृत, राजपुरुष प्रजापुरुष आदि द्विविध जनोंको अर्थात् सब लोकोंको ज्ञान प्राप्त करनाही चाहिए । मंत्र ४ के 'नृ-चक्षस्' शब्दसे 'मनुष्यमात्रोंको ज्ञान देना' यह उपदेश ध्वनित हुआ था । वही भाव यहां अब बिलकुल स्पष्ट हुआ है ।

'मनुष्यः ब्रह्मणे ब्राह्मणं आलभेत ।' प्रत्येक मनुष्य ज्ञानप्राप्तिके लियेब्राह्मणके पास पहुंच जावे । अर्थात् (१) ज्ञान लेनेका हरएक मननशील मनुष्यको जन्मसिद्ध अधिकार है, (२) तथा जो मनुष्य ज्ञानीके पास शिष्य बनकर आ जायगा, उसको निष्कपट भावसे ब्राह्मणने पढानाहि चाहिए । कोई जातिनिर्देश यहां नहीं । तथा राजाको उचित है, कि ब्राह्मणको अर्थात् ज्ञानीको नियुक्त करके, किसी प्रकारकी रुकावट न रखता हुआ, सबको ज्ञानसे युक्त करे । जिनके पास मन और बुद्धि है उनको ज्ञान ग्रहण करनेका अधिकार है । वेदमें किसी स्थानपर देखनेमें नहीं आता कि, किसी मनुष्यको भी जाति, रंग, स्थान आदि क्षुद्र कारणोंके कारण, ज्ञानसे वंचित रखनेका अंशमात्र भी ध्वनि निकलता हो । अस्तु । इस प्रकार इस मंत्रका भाव स्पष्ट हुआ । अब ब्राह्मणोंके गुणधर्म देखेंगे:—

ब्राह्मणके कर्तव्य।

तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो यामस्यन्ति शरव्यां न सा मृषा॥ अनुहाय तपसा मन्युना चोत दूरादव भिन्दन्त्येनम्॥

अथर्व. ५।१८।९

'(तीक्ष्ण-इषवः) जिनके बाण तीखे हैं, और जो (हेति-मंतः) हथियार धारण करते हैं, ऐसे (ब्राह्मणाः) ब्राह्मण (यां शरव्यां) जिन शस्त्रोंको (अस्यन्ति) फेकते है; (सा न मृषा) वे शस्त्र व्यर्थ नहीं जाते । वे (मन्युना) तेजस्वि बलके साथ (तपसा) तपके अर्थात् कष्ट सहन करके (अनु-हाय) शत्रुका पीछा करके (उत) निश्चयसे (एनं) इस शत्रूको (दूरात् अव भिन्दन्ति) दूरसेहि भेदन करते हैं ।'' इससे स्पष्ट है कि ब्राह्मणोंको भी शस्त्रास्त्रोंमें प्रवीण होना चाहिए । ज्ञानमें प्रवीण रहना उनका कर्तव्य हैहि है।

नास्य धेनुः कल्याणी नानड्वान्त्सहते धुरम्॥
वि-जानिर्यत्र ब्राह्मणो रात्रिं वसति पापया॥

अथर्व. ५।१७।१८

"इस राष्ट्रमें (धेनुः) गाय (न कल्याणी) हितकारक दूध नहीं देती तथा (अनड्वान्) बैल गाडीकी धुराको ओढनेके लिये समर्थ नहीं होता, कि जिस राष्ट्रमें (वि-जानिः) अपनी पत्नीको छोडकर (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (पापया) पापी स्त्रीके साथ (रात्रिं वसति) रात्रीमें रहता है ।'' इस मंत्रमें कहा है, कि ब्राह्मणके दुष्कृत्योंका परिणाम पशुपक्षियोंपर भी होता है, फिर मनुष्योंपर होगाहि। अर्थात् ब्राह्मणोंके नीतिभ्रष्ट और अधार्मिक होनेसे सब राष्ट्रकी अवनति होती है। इसलिये ब्राह्मणोंको उचित है कि वह अपने धर्मनियमोंपर स्थिर रहे । तथा—

उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघित्सति॥
परा तत्सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते॥

अथर्व. ५।१९।६॥

"जो राजा अपने आपको (उग्र.) शक्तिमान समझकर ब्राह्मणको कष्ट देता है, (तत् राष्ट्रं) उसका वह राज्य (परा सिच्यते) दूरतक गिर जाता है, जहां (ब्राह्मणः जीयते) ब्राह्मणको कष्ट पहुंचते है । जिस राष्ट्रमें ज्ञानीको कष्ट पहुंचते हैं, ज्ञानीका कोई उपदेश नहीं सुनता, ज्ञानीके उपदेशोंको दबानेका यत्न किया जाता है, वह राष्ट्र अवनत होता है, क्योंकि ज्ञानसेहि सबकी उन्नति होनी है । तथा—

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ॥
वाचं पर्जन्य-जिन्विताँ प्र मण्डूका अवादिषुः ॥ १ ॥

ऋ. ७।१०३।१॥ अथर्व. ४।१५।१३॥

"(संवत्सरं शशयानाः) वर्षकी अवधीतक समाधिकी शांत वृत्ति (Tranquility) में रहते हुए (व्रत-चारिणः) नियमोंके अनुसार आचरण करनेवाले तथा (मण्डूका.=मण्डति भूषयति विभाजयति वा । भूषयिता विभाजयिता वा मंडूकः) मंडन और खंडन करनेवाले (ब्राह्मणाः) विद्वान् लोक (पर्-जन्य-जिन्विताँ वाचं) पूर्तिकारक प्रेरणासे वाणीको (प्र अवादिषु) विशेष प्रकार बोलते है ।"

'मंडूक, मंडन, मंडप, मंडल' इत्यादि शब्द 'मंडू' धातुसे बने हैं जिसका अर्थ 'भूषित करना, शोभायुक्त बनाना, मंडन करना' ऐसा होता है । 'मंडू' धातुका दूसरा अर्थ 'विभाजन' अर्थात् 'भेदन, छेदन, खडन' करना है । अर्थात् 'सत्यका मंडन और असत्यका खंडन' करनेका भाव 'मंडूक' में है । जो 'धर्मका मंडन और अधर्मका खंडन करता है' उसकी पदवी मंडूक होती है । लौकिक संस्कृतमें 'मेंडक' ऐसा इसका अर्थ है, उसीको मनमें धरकर और उक्त यौगिक मूल धात्वर्थको छोडकर डा. मूर साहब आदि यूरोपीयनोंने अपनी पुस्तकोमें यह मंत्र 'ब्राह्मणोंकी निंदा करनेके लिये बनाया गया है' ऐसा लिखा है । वह उनके अज्ञानका द्योतक है ।

'पर्जन्य' शब्दका अर्थ 'पूर्ति-जन्य, पूर्ति-जनक, पूर्णत्वका उत्पादक' है । पूर्णता (Perfection) करनेका गुण विद्वानोंकी प्रभावयुक्त वाणीमेंहि हुआ करता है । 'पर्-जन्य-जिन्विताँ वाचं' का अर्थ

पूर्णता उत्पन्न करनेकी इच्छासे कही हुई वाणी अथवा वक्तृता' ऐसा है। यही ब्राह्मणोंका काम है कि वे अपनी वक्तृतासे राष्ट्रमें ज्ञानके विषयमें पूर्णता उत्पन्न करें और किसी स्थानपर न्यूनता न रखें। उक्त सूक्तका और एक मंत्र देखीए:—

> ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृण्वन्तः परि-
> वत्सरीणम् ॥ अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना आवि-
> र्भवन्ति गुह्या न केचित् ॥
>
> ऋ. ७।१०३।८॥

"(सोमिनः) सौम्य, शांत, (अ-ध्वर्यवः) अहिंसायुक्त कर्म करने-वाले, (सिष्विदाना घर्मिणः) तपनेवाले, तपस्वी (ब्राह्मणासः) विद्वान् लोक (परि-वत्सरीणं ब्रह्म कृण्वन्तः) एक वर्षकी अवधीतक ज्ञानका उपदेश करनेवाले, (गुह्या न केचित्) किसी प्रकार गुप्तता न रखते हुए (आविर्भवन्ति) बाहर आते हैं और (वाचं अक्रत) वक्तृता करते हैं।" अर्थात् एक वर्षपर्यत सतत पढाईका कार्य करनेवाले विद्वान् शांत अहिंसा-शील तपस्वी ब्राह्मण बाहर आकर उपदेश करते हैं, पक्षपातको छोडकर, अंदर एक और बाहर एक इस प्रकार न करतेहुए, ठीक सत्यका मंडन और असत्यका खडन करते है। तथा.—

> ब्राह्मणमद्य विन्देयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयꣳ
> सु-धातु-दक्षिणम् ॥ अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदा-
> तारमाविशत ॥
>
> यजु. ७।४६॥

"(अद्य ब्राह्मणं विन्देयं) हम सब आज विद्वानको प्राप्त करें, जो विद्वान् (१) (पितृमंतं) पितृमान् अर्थात् उत्तम पितासे उत्पन्न हुआ हो, (२) (पैतृमत्यं) जिसका पितामह अच्छा हो, (३) (आर्षेयं) ऋषि-योंका सब ज्ञान जिसनें पढा हो, तथा (४) (ऋषिं) जो स्वयं दिव्य दृष्टिसे युक्त हो और (५) (सु-धातु-दक्षिणं) उत्तम वीर्य धारण करनेमें दक्ष हो अर्थात् इंद्रियनिग्रही ऊर्ध्वरेता हो। (अस्मत्-द्राता) हमारेसे प्रगतिको प्राप्त होकर (देव-त्रा) विद्वानोंमें जो (प्र-दातारं) विशेष

दानशील हों उनके पास (गच्छत) जाओ और उनमें (आ-विशत) प्रविष्ट होकर रहो।" इस मंत्रमें किस प्रकारका ब्राह्मण गुरु करना चाहिए, इसका उत्तम वर्णन है; इस प्रकार गुरु होंगे तो सबका सुधार हो सकता है। तथा—

> ब्राह्मणानभ्यावर्तें। ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम्॥
>
> अथर्व. १०।५।४१॥

"ब्राह्मणोंको मै प्राप्त करता हूं। वे ब्राह्मण मुझे ज्ञानतेजरूपी धन देवें।" इसप्रकार ब्राह्मणोंके गुणवर्णन करनेवाले बहुत मंत्र हैं, परंतु यहां नमूनेके लिये थोडेसे रखे हैं। इन मंत्रोंसे ज्ञात हो सकता है, कि ब्राह्मणका ज्ञान-प्रसारका कार्य राष्ट्रमें कितना है, और जनताकी उन्नतिके साथ सच्चे उच्च ब्राह्मणका कितना संबध है। अब हम अगला उपदेश देखेंगे:—

(२) "तपसे कौलालम्।" [२१]

इस वाक्यका अर्थ ठीक ध्यानमें आनेके लिये 'तपस्' और 'कौलाल' इन दोनों शब्दोंके अर्थ विस्तारपूर्वक देखने चाहिए:—

तपस्का अर्थ=Heat उष्णता, गर्मी; voluntary suffering स्वकीय इच्छासे कष्ट सहना, अच्छा कार्य करनेके समय होनेवाले कष्ट आनंदसे सहना; severe meditation ध्यान, चित्तकी एकाग्रता; moral virtue धर्म-नीति-विषयक सद्गुण, merit सद्गुण; special duty विशेष कर्तव्य; जैसा ब्राह्मणोंका तत्त्वज्ञानका विचार, क्षत्रियोंका राज्य-संरक्षण, वैश्योंका कृषि व्यापार और पशुसंरक्षण, तथा शूद्रोंका कारीगरी और इमानी नौकरी, ये चार वर्णोंके चार विशेष कर्तव्य तप कहलाते है। तथा—

> ऋतं तपः सत्यं तपः श्रुतं तपः शान्तं तपो दमस्तपः शमस्तपो दानं तपो यज्ञस्तपो भूर्भुवःसुवर्ब्रह्मैतदुपास्वैतत्तपः॥
>
> तै. आ. १०।८॥

"(ऋतं) अटल नियमोंका पालन (सत्यं) सत्यका पालन (श्रुतं) विद्याध्ययन, (शान्तं) चित्तकी शांति, (दमः) मनका दमन (शमः) इंद्रियोंका शमन, (दानं) परोपकार, (यज्ञ) सत्कार, संमति दानात्मक कर्म, (भूः) अस्तित्व रखना, (भुवः) मनन करना, (सुवः) आनंद प्राप्त करना, उच्च गति प्राप्त करना, (ब्रह्म) परमेश्वरकी उपासना करना ये सब तप हैं। तथाः—

तपश्च स्वाध्याय-प्रवचने च ॥

तै. आ. ७।९

"(स्वाध्यायः) अध्ययन और (प्र वचनं) उपदेश ये तप हैं।" तथाः—

पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्मं वसानस्तपसो-
दतिष्ठत् ॥ तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे
अमृतेन साकम् ॥

अथर्व. ११।५।५

"(ब्रह्मणः ब्रह्मचारी) ज्ञानका ब्रह्मचारी अर्थात् ज्ञानार्जनमें अपना समय व्यतीत करनेवाला विद्यार्थी, (घर्म वसानः) श्रम करता हुआ जब (पूर्व. जातः) पूर्ण बन जाता है, तब वह (तपसा उदतिष्ठत्) तपके कारण उन्नत होता है। उसीसे श्रेष्ठ ब्रह्मका तत्त्व-ज्ञान प्रसिद्ध होता है, तथा (अमृतेन साकं) अमरपनके साथ (सर्वे देवाः) सब दिव्य गुण तथा दिव्य पदार्थ उसीके साथ रहते हैं।"

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति ॥
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥

अथर्व ११।५।१७

"(राजा) राष्ट्रका अधिकारी, (ब्रह्मचर्येण तपसा) ब्रह्मचर्य अर्थात् विद्याध्ययन और वीर्य संरक्षणरूप तपके द्वारा राष्ट्रका संरक्षण करता है। तथा (आचार्यः) अध्यापक ब्रह्मचर्यके साथहि रहनेवाले विद्यार्थीकी

इच्छा करता है।" अर्थात् राष्ट्रके सब अधिकारी क्षत्रिय तथा सब अध्यापक ब्राह्मण ब्रह्मचर्य आदि सुनियमोंका पालन करनेवाले होवें, तथा वे दोनों राष्ट्रके सब लडकोंसे ब्रह्मचर्य पालन और वीर्य रक्षण करावें। यह सब तप है। इतने विवरणसे 'तप' का निम्न अर्थ प्रतीत होता है:—"(१) जनतामें गर्मी अर्थात् उत्साह रखना, (२) अच्छे कर्म करनेके समय होनेवाले सब कष्ट आनंदसे सहना, (३) सब कर्म विशेष ध्यानपूर्वक करना, (४) धर्म नियमोंका उत्तम पालन करना, (५) सद्गुणोंका धारण करना, (६) अपने विशेष कर्तव्य पालन करना, (७) उन्नतिके नियमोंका पालन (८) सत्यका पालन, (९) विद्याका अध्ययन, (१०) चित्तकी शांति, (११) मनका दमन, (१२) इंद्रियोंका संयम, (१३) परोपकार, (१४) योग्य सज्जनोंका सन्मान करना, (१५) उत्तम सज्जनोंके साथ मित्रता करना, (१६) दीनोंकी सहायता करना, (१७) अपना अस्तित्व उत्तम प्रकारसे रखनेके लिये पुरुषार्थ करना, (१८) उन्नति प्राप्त करना, (१९) ईश्वरकी भक्ति करना, (२०) सत्यधर्मका उपदेश करना, (२१) वीर्यका संरक्षण करके बलवान बनना, ये सब तप हैं।

अब 'कौलाल' का अर्थ देखीए='कुले भवः कौल.।' जो उत्तम कुलमें उत्पन्न होता है उसको 'कौल' कहते है। Born of a noblefamily, well-born कुलीन; worshiper of power शक्तिका उपासक॥

'कौलं अलति भूषयति पर्याप्नोति वा स कौलालः।' जो कुलीनताको भूषित करता है अथवा उसकी परिपूर्णता करता है वह कौलाल होता है। अर्थात् 'स्वयं कुलीन होकर कुलीनताके योग्य सब कार्य करता है' वह कौलाल है। कई पुरुष उत्तम कुलमें उत्पन्न होकर अधम कर्म करते हैं उनका यहां इस शब्दसे ग्रहण नहीं होता, परंतु जो स्वयं श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न होते हुए, उस श्रेष्ठ कुलका यश वृद्धिंगत करनेके लिये सर्वदा योग्य पुरुषार्थ करते हैं, उन पुरुषोंको तप शब्द ज्ञातसे होनेवाले उक्त कार्य करनेमें लगाना चाहिए। (For special moral education appoint a person who is well-born & who adorns his family by his noble actions) उत्तम धर्मनीतिके प्रचारके लिये कुलीन और कुलभूषण पुरुषको संयुक्त करो।

"(३) अयेभ्यः कित-वम् ।" [३७]

'अयः' का अर्थ=A movement by right direction योग्य दिशासे प्रगति करना; उन्नतिकी ओर जाना, अभ्युदयके लिये पुरुषार्थ करना। Pro-gress प्र-गति ॥ (अय-गतौ)

'कित-वः' का अर्थ—"कित संज्ञाने। चिकेत्ति-जानाति। कितं ज्ञानं वनति संभजति इति कित-वः ज्ञानैकपरायणः।" कित का अर्थ ज्ञान; तथा ज्ञानका सेवन करनेवाला होता है, वह 'कित-व' अर्थात् जो ज्ञानके लिये हि अपने आपको अर्पण करता है।

'अभ्युदयके कार्योंके लिये ज्ञानके उपासकको प्राप्त अथवा प्रयुक्त करो।'(For pro-gress appoint men devoted to learning)

"(४) सं-ज्ञानाय स्मर-कारीम् ।" [४७]

'(स्मर-कारीं) प्रीतिसे, प्रेमके साथ, कर्म करनेवालेको (सं-ज्ञानाय) उत्तम ज्ञानके लिये प्रयुक्त करो।' (For excellent information appoint or approach a man who is a lover of work.)

"(५) प्रयुग्भ्य उन्मत्तम् ।" [३५]

'प्र-युज्, प्रयोग' का अर्थ=Experiment अनुभवके लिये कार्य करके जांचना; a plan, scheme, तजवीज, मन्सूबा, कल्पना, पद्धति, व्यवस्था; application ध्यानसे काम करना; exhibition प्रदर्शन; practice कर्मका अनुष्ठान ॥

'उन्मत्त' उत्+मत्त' का अर्थ='उद्गतः मदः यस्मात्।' जिससे घमंड चली गई है अर्थात् जो घमंड नहीं करता।

'विशेष महत्वकी व्यवस्थाके कार्यके लिये ऐसे मनुष्यको प्रयुक्त करो कि जो घमंडी न हों।' (For an experimental scheme appoint men free from pride)

"(६) गंधर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यम् ।" [३४]

'व्रात्यः* '=व्रजति इति व्रात्यः ॥ जो उपदेश करनेकेलिये सदा भ्रमण करता रहता है उसको व्रात्य कहते हैं ।

'गंधर्वः'=गां पृथिवीं धारयति इति गं-धर्वः ॥ जो भूमीका धारण करके अर्थात् अपनी जमीनके आश्रय पर हि रहता है वह गंधर्व अर्थात् किसान है । (Farmers) 'अप्-सरसः'=अप् अर्थात् कर्मोंकेलिये जो संचार करते हैं उन कर्म-चारियोंका यह नाम है । (Labourers)

'किसानों और कर्मचारियोंकेलिये भ्रमण करनेवाले उपदेशक रखो । (For farmers and labourers appoint travelling preachers)

गंधर्व तथा अप्सरस्के अन्य अर्थ यहां अभीष्ट नहीं ऐसा प्रतीत होता है । गंधर्व—गायक, गानेवाला, वक्ता । अप्सरः—नर्तकी, नाचनेवाली ॥ इस विषयमें पाठकोंको विशेष सोचना चाहिए ।

व्रात्यके विषयमें अथर्ववेदमें बडा वर्णन देखने योग्य है ।

> तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥ स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयात् व्रात्य काऽवात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथाऽस्तु व्रात्य यथा ते वशस्तथाऽस्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथाऽस्त्विति ॥ २ ॥ अथर्व. १५।११ ॥

"इस प्रकारका भ्रमण करनेवाला (व्रात्यः) उपदेशक जब अपने घर आ जायगा, तब स्वयं उसके सन्मुख जाकर पूछना चाहिए, कि हे (व्रात्य) उपदेशक ! आप इतने दिन कहां थे ? आपके लिये यह उदक है । आपको हम आनंदमें रखेगे । जो आपके लिये प्रिय होगा वही किया जायगा । जो आपको अनुकूल होगा वही होगा । जो आपकी इच्छा होगी वैसाहि हम आचरण करेंगे ।"

---

* 'व्रात'—का अर्थ 'समूह, सघ' है ॥ 'व्राते भवः व्रात्यः ।' जो मनुष्य समुदायके भलाईके लिये होता है, उसको व्रात्य कहते है ।

इस प्रकार उपदेशक आने पर उसका स्वागत करना चाहिए। इस विषयमें अथर्ववेद कां० १५ देखने योग्य है। उपदेशकोंका योग्य सन्मान करना लोकोंका धर्म है।

(७) "सर्प-देव-जनेभ्यो अ-प्रतिपदम्।" [३६]

(सर्पाः–Barbarians) जंगली, अज्ञानी मनुष्य, (देवाः) विजयकी इच्छा करनेवाले मनुष्य, तथा (जनाः) इतर साधारण लोक इन तीन प्रकारके लोकोंके लिये (अ प्रतिपदं। न विद्यते प्रतिपद् अधिकं ज्ञानं यस्मात्) जिससे अधिक ज्ञानी कोई नहीं, अर्थात् जिसका यथा-योग्य ज्ञान होता है ऐसे पुरुषको प्रयुक्त करो।" (For barbarians, for ambitious people, and for ordinary people appoint suitable wise men)

सर्पः–(सर्पति इति सर्पः) जो केवल चलते फिरते हैं, परंतु जिनको मनुष्यत्वके विषयका ज्ञान प्राप्त नहीं।

जनः–(जनयति इति जनः) जो केवल प्रजा उत्पन्न कर सकता है, परंतु मनुष्यताका उच्च ज्ञान जिसके पास नहीं।

देवः–इस शब्दके अनेक अर्थ हैं:—

(१) दीव्यति क्रीडति इति देवः।—(One who sports)–जो मर्दानी खेल खेलते हैं। sports-man.

(२) दीव्यति विजिगीषति इति देवः।—(One who wishes to conquer)–विजयकी इच्छा और विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले देव होते हैं।

(३) दीव्यति व्यवहरति इति देवः।—(One who transacts business)–जो व्यापारव्यवहार करता है वह देव कहलाता है।

(४) दीव्यति द्योतते इति देव.।—(One who shines)–जो चमकता है वह देव होता है।

(५) दीव्यति स्तौति इति देवः।—(One who praises)–जो ईश्वरकी स्तुति करता है। ईश्वरका उपासक देव कहलाता है।

(६) दीव्यति मोदते इति देवः ।—(One who is joyful)-जो सदा आनंद वृत्तिसे रहता है ।

(७) दीव्यति माद्यति इति देव. ।—(One who delights)-जो सदा खुश रहता है ।

(८) दीव्यति स्वपिति इति देवः ।-(One who sleeps sound)-जिसको गाढ निद्रा आती है ।

(९) दीव्यति कामयते इति देवः ।-(One who loves)-जो प्रीति करता है ।

(१०) दीव्यति गच्छति इति देवः ।-(One who moves or is active)-जो हलचल करता है ।

(११) देवो दानात् ।-(One who gives in charity)-जो दान देता है ।

इतने देवोंके लक्षण होते हैं । इस प्रकारके सब लोकोंको शिक्षण देनेके लिए ऐसे योग्य पुरुषोंको रखना चाहिए कि जो जहां उत्तम प्रकारसे योग्य हो ।

न्याय-विभाग ।

(Legal department)

"(८) आ-शिक्षायै प्रश्निनम् । " [५८]

'(आशिक्षायै) शिक्षणकी इच्छा-करनेवालेके लिये (प्रश्निनं) प्रश्न पूछनेवालेको प्रयुक्त करो ।'

"(९) उप-शिक्षायै अभि-प्रश्निनम् ।" [५९]

'(उप-शिक्षायै) अभ्यासके लिये (अभि-प्रश्निनं) जिज्ञासूको नियुक्त करो । '

"(१०) मर्यादायै प्रश्न-विवाकम् ।" [६०]

'मर्यादा—मर्यैः मनुष्यैः आदीयते या सा मर्याऽऽदा । ' जो सब

मननशील मनुष्योंने अपनी स्वसंमतिसे निश्चित की होती है, उस नियम-व्यवस्थाको मर्यादा कहते हैं। (Any rule, law or bond of morality fixed by the self-detei mination of the people)

(मर्यादायै) न्याय व्यवस्थाके लिये (प्रश्न-विवाकं-An arbitrator) पंचको नियुक्त करो।' (for legal questions appoint an arbitrator)

'प्रश्निन्' का अर्थ—A plaintiff, a complainant वादी, मुद्दई, फिरयादी।

'अभिप्रश्निन्' का अर्थ—A defendant, an accused प्रतिवादी मुद्दाअलह।

'प्रश्नविवाक' का अर्थ-An arbitrator पंच, न्यायाधीश।

ये भी इनके अर्थ हैं। इन अर्थोंके अनुकूल 'आशिक्षा, उपशिक्षा' के अर्थ भी बदलने उचित होंगे। परंतु इन अर्थोंका आजकलके कोशोंसे कोई पता नहीं चलता। इस लिये इस बातको विद्वान् स्वाध्यायशील पुरुषोंको सोचना चाहिए।

"(११) धर्माय सभा-चरम्।" [१३]

'(धर्माय) धर्मशास्त्रके लिये (सभा-चरं) धर्मसभाके सभासदको प्राप्त करो।' (For law, practice, justice, equity, morality & c. approach a member of the state-assembly)

'धर्म' शब्दका अर्थ 'स्मृति शास्त्र' अर्थात् Law of the state राष्ट्रका कानून है। राष्ट्रीय महासभाके सभासदोंसे राष्ट्रके कानूनके विषयमें अर्थात् राजनियमोंके विषयमें पूछना चाहिए।

नि-यम विभाग।

(Department of legislature)

"(१२) यमाय अ-सूम्।" [१०१]

'(यमाय) नियमोंके लिये (अ-सूं) निःपक्षपाती को प्राप्त करो।'

(For knowledge of rules approach an impartial member)

"(१३) यमाय यम-सूम् ।" [१०३]

'(यमाय) उपनियमोंके लिये (यम-सूं) नियम उपनियम बनानेवालेके पास जाओ ।' (For regulations approach those who make rules and regulations)

'यम-सू' उन सभासदोंका नाम होता है, कि जो नियम उपनियम बनानेवाली सभाके सभासद होते हैं । तथा 'अ-सू' उन सभासदोंका नाम होता है कि, जो स्वयं नियम उपनियम नहीं बनाते, परंतु निःपक्षपातसे सब नियम उपनियमोंका लोकहितकी दृष्टिसे परीक्षण करते हैं ।

विवाद ।

(Debate)

"(१४) अतिक्रुष्टाय मा-गधम् । [१०]

'मां-प्र-माणं गध्यति गृह्णाति गध्यं गृह्णातेः । निरु. ४।२।५१॥' जो योग्य प्रमाणोंका ग्रहण करता है, उसको मा-गध कहते हैं । (One who uses authoritative evidence)

(अति-क्रुष्टाय) महान वक्तृत्वके लिये (मा-गधं) योग्य प्रमाण देनेवालेको प्रयुक्त करो । (For special oratory appoint such man as can give authoritative evidence)

"(१५) घोषाय भषम् ।" [१४४]

(घोषाय) बडे आवाजकी वक्तृताके लिये (भषं) बडी आवाजसे बोलनेवालेको रखो । (For a vehement speech appoint a thundering orator)

"(१६) अन्ताय बहुवादिनम् ।" [१४५]

'(अन्ताय) समाप्तिके लिये (बहु-वादिनं)बहुत वक्तृत्व करनेवाले

को नियुक्त करो ।' वाद विवाद समाप्त करना हो, तो उत्तम प्रभावशाली वक्ताको रखीए, जो बहुत और अच्छा बोल कर स्वपक्षका अच्छी प्रकार मंडन कर सकता हो ।

"(१७) अनन्ताय मूकम् ।" [१४६]

'जो वादविवाद (अनन्ताय) अन्त न होनेवाला हो, वहां (मूकं) कम बोलनेवालेको रखो ।' कई वादविवाद, शास्त्रार्थ, बहस मुबाहिसे ऐसे हुआ करते हैं कि, जो समाप्त नहीं हो सकते, विपक्षी लोक वितंडवाद करते हुए बोलतेही जाते हैं, और किसी प्रकार भी नियमानुकूल नहीं चलते। ऐसी अवस्थामें बहुतही थोडा बोलनेवाला जो हो उसकोहि रखना उचित है, क्योंकि बोलने और न बोलनेका परिणाम विपक्षी पर कुछ भी नहीं होना है। जो वादविवाद सत्यका ग्रहण और असत्यको छोडनेके लिये नहीं होता, उसमें ज्ञानी मनुष्यको अधिक बोलना नहीं चाहिए।

"(१८) आर्त्यै जन-वादिनम् । " [१३०]

'(आर्त्यै) कठिन प्रसंगके लिये, विनाशकी अवस्थाके समय (जन-वादिनं) लोकोके हितकी बात जो ठीक प्रकार कह सकता है उसको रखो ।'

योग-विभाग ।

(Department of physico-spiritual culture)

"(१९) योगाय योक्तारम् । " [९३]

'(योगाय) योगाभ्यासकेलिये (योक्तारं) योग करनेवालेको रखो । '(For physico-spiritual culture appoint one who is a physico-spiritual culturist)

योगके आठ अंग हैं। (१) यम, (२) नियम, (३) आसन और (४) प्राणायाम, ये चार अंग शारीरिक स्वास्थ्य (Physical culture) के लिये हैं। अहिंसा, सत्य, अ-स्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये

पांच यम हैं । शुद्धि, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरभक्ति ये पांच नियम है । व्यायामके अनंत आसन है जिनके करनेसे शरीर निरोगी और सुडौल बनता है । प्राणायामके करनेसे रक्तशुद्धि, हृदय और फेंफडोंकी शुद्धि होकर सब प्रकारका आरोग्य प्राप्त हो सकता है । शरीरस्वास्थ्यके लिये इन चार अंगोंके पालनकी अत्यन्त आवश्यकता है । शरीरमें रोग इसलिये होते हैं, कि लोक इन चार अंगोंकी ओर ध्यान नहीं देते। जन्मसे दुर्बल मनुष्य इन चार अंगोंका अभ्यास करके जिस किसी आयुमें निरोगी बन सकते है ।

(५) प्रत्याहार, (६) ध्यान, (७) धारणा और (८) समाधि ये चार योगके उत्तर अंग हैं । इनसे आत्मिक बल (Spiritual culture)प्राप्त होता है। प्रत्याहारसे इंद्रियोंके साथ मनका संयम करना अर्थात् उनको बुरे विचारोंसे हटाकर अच्छे विचारोंमेंहि प्रवृत्त करना । सद्गुणोंका मनन ध्यान होता है । मनकी एकाग्रता धारणाका तात्पर्य है तथा अपने आत्माके स्वरूपमें स्थिर होना, तथा विरुद्ध समयमें भी शांतवृत्ति रखना समाधिका साध्य है । यह चार अंग आत्मिक बल बढानेवाले हैं ।

इस प्रकार योग-साधनसे शारीरिक और आत्मिक बल बढता है । और योगी पूर्ण आरोग्यको प्राप्त होकर, पूर्ण आयु तक उत्तम प्रकारके पुरुषार्थ करनेके लिये योग्य होता है ।

“(२०) अ-थर्वभ्यो अव-तोकाम् ।” [१०२]

‘अ-थर्वन्’ का अर्थ—‘थर्वतिश्चरतिकर्मा तत्प्रतिषेधः । अ-थर्वाणो अ-थनवन्तः ॥” निरु. ११।१९।१५॥ ‘थर्व’ का अर्थ ‘चंचलता’ है और ‘अथर्वन्’ का अर्थ ‘अचंचल, स्थिर’ है। जिस समय योगीका चित्त स्थिर होता है उस समय उसको ‘अ थर्वा’ कहते है । (Steady-minded) समाधिस्थित योगीका नाम अ-थर्वा होता है ।

‘अव-तोका’—‘अवतुञ्जति रक्षति इति अवतोका ।’ संरक्षक मंडली का नाम अवतोका है । (Party of guards)

समाधिमें रहनेवाले योगियोंके लिये संरक्षक मंडली रखो । (For

persons absorbed in meditation appoint a party of guards)

समाधिमें रहनेवालोंका संरक्षण करना अन्य लोकोंका कर्तव्य है। उस अवस्थामें वे अपने आपका संरक्षण नहीं कर सकते। इस लिये दूसरों-पर उनके संरक्षणकी जिम्मेवारी है।

“(२१) वपुषे मानस्कृतम्।” [९७]

‘(वपुषे) शरीरकेलिये (मानस्कृतं) प्रमाणके अनुसार कर्म कर-नेवालेको प्राप्त करो।’ शरीरको आरोग्य संपन्न और सुडौल बनानेके लिये ऐसे मनुष्यको प्रयुक्त करो कि जो सब व्यवहार योग्य प्रमाणके अनुकूल करता है।

“(२२) शीलाय आञ्जनी-कारीम्।” [९८]

‘(शीलाय) सुस्वभावके लिये (आञ्जनी-कारीं) दृष्टिका शोधन करनेवालेको रखो।’ अंजनसे दृष्टिकी शुद्धि होती है। शुद्ध दृष्टि होनेसे उत्तम स्वभाव अर्थात् शील हो सकता है। शुद्ध दृष्टिसे प्रति दिन अपने मन और इंद्रियोंके व्यवहारोंकी जांच करनेसे शील सुधरता है।

“(२३) मेधायै वासः–पल्पूलीम्।” [७९]

‘(मेधायै) बुद्धि और शक्तिकेलिये (वासः–पल्पूलीं) कपडे स्वच्छ धोनेकी व्यवस्थाको रखो।’ स्वच्छ धोये हुए कपडोंको पहननेसेहि शारीरिक शक्ति और बौद्धिक शक्ति ठीक रहती है। मलीन कपडे पहन-नेसे शरीर भी रोगी हो सकता है और बुद्धि भी बिघड जाती है। जो धारणावाली बुद्धि होती है उसको मेधा कहते हैं।

स्नान।

“(२४) ब्रध्नस्य विष्टपाय अभिषेक्तारम्।” [७३]

‘(ब्रध्नस्य) सूर्य, सूर्यके किरण, सूर्यकी उष्णताके, (विष्टपाय) स्थानकेलिये, (अभिषेक्तारं) स्नान करने करानेवालेको रखो।’ जो

उष्णदेश हों, वहां स्नानकी बहुत आवश्यकता होती है । गर्मीके दिनोंमें गर्म देशके लोक कई बार स्नान करते हैं, जिससे उनका आरोग्य अच्छा रहता है । जहां सूर्यके किरणोंकी उष्णता अधिक हो, उन स्थानोंमें स्नान करने करानेवालोंका हित होता है । उष्णताके लिये स्नानहि उपाय है ।

सूर्याघात, लू, सरसाम, लपट आदिकेलिये शीतोदकका स्नानहि दवा हो सकती है ।

शुद्धोदक पान ।

" (२७) कीलालाय सुरा-कारम् । " [६७]*

'कीलाल' का अर्थ—A heavenly drink स्वर्गीय पान, अमृत, honey मध; drinkable water पीने योग्य पानी; food and drink of gods देवोंका अथवा श्रेष्ठोंका अन्नपान । जिस शुद्ध पानीमें सौ भागोंमें १ भाग नमक मिला हो, उसको 'अमृत-जल' कहते हैं, इसके पीनेसे अनेक व्याधियां दूर होतीं हैं । अमृतपान अथवा कीलालपान इसी प्रकारका शुद्ध जलपान प्रतीत होता है। इस विषयमें अधिक विचारकी आवश्यकता है। नारियलके अंदरके पानीको भी कीलाल कहते हैं।

'सुरा' का अर्थ—निघण्टु नामक वैदिक कोशमें 'सुरा, सूरा, सिरा' ये शब्द उदक नामोंमें दिये हैं । जिससे उनका अर्थ जलहि है । आधुनिक कोशोंमें भी इसका अर्थ—Water पानी, a drinking vessel पानी पीनेके पात्र; distilled water भापसे शुद्ध किया हुआ पानी ।

'सुरा-कार' का अर्थ—भापद्वारा पानीको शुद्ध करनेवाला । पानीकी भाप करके उस भापका फिर पानी बनानेसे शुद्ध पानी प्राप्त होता है । 'सुराकार' शब्दका अर्थ 'नारियलका वृक्ष' भी है, क्योंकि नारि-यलके अंदरके पानीका नाम 'सुरा' है ।

---

* यह मंत्र शूद्र विभागमे रखना उचित है । परतु स्वास्थ्यके साथ शुद्धोदक पानका संबंध होनेके कारण यहा रखा है । पाठक इस विषयमे अधिक विचार करें।

'सुरा' शब्दका 'मद्य, शराब' ऐसा अर्थ है, तथा 'सुरा-कार' शब्दका 'शराब बनानेवाला' ऐसा भी दूसरा अर्थ है। ये अर्थ यहां अभीष्ट नहीं। क्योंकि वेदने मद्यपानकी निन्दा करके निषेध किया हैः—

हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम् ॥ ऊधर्न नग्ना जरन्ते ॥ ऋ ८।२।१२ ॥

'(न) जैसे (सुरायां) शराब (हृत्सु पीतासः) दिल खोलकर पीनेवाले (युध्यन्ते) आपसमें लढते हैं, तथा (न) जैसे (नग्नाः) नंगे होकर (ऊधः) रातभर (जरन्ते) बडबडते हैं, वे (दुर्मदासः) दुष्ट बुद्धि लोक होते हैं।' दुर्मदका अर्थ जिनका मद दुष्ट होता है, आनंद करनेकी रीति जिनकी बहुत बुरी होती है, जो शराब आदी पीकर नाचना हि खुशीका चिह्न समझते है वे 'दुर्मद' होते हैं। 'सु मद' ऐसे नहीं हुआ करते वे सभ्यतासे रहते है। 'सुमद' लोक नारियलका पानी तथा केवल शुद्ध जल पीते है। तथा—

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् ॥
अयोर्ह स्कंभ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥
ऋ. १०।५।६ ॥

'(कवयः) ज्ञानी लोकोंनें (सप्त मर्या-दाः) सभ्यताकी सात मर्यादाएं (ततक्षुः) बनाई है। (तासां एकां) उनमेंसे एक मर्यादाका भी जो (अभि–गात्) उल्लंघन करता है, वह (अंहुरः) बडा पतित होता है। परंतु जो (धरुणेषु) धारण शक्तियोंमें रहनेवाले (उप-मस्य standard) उपमा देने योग्य (नीडे-नीले-नी+इले Highest peace) उच्च शांतिमें, तथा (पथां वि-सर्गे) अनेक मार्गोंका जहां उपसर्ग नहीं, ऐसे स्थानमें (तस्थौ) स्थिर रहता है वह मानो (ह) निश्चयसे (अयोः) प्रगतिके (स्कंभे) स्तंभ पर आरूढ हुआ है।''

सात मर्यादा—(१) **स्तेयं**—चोरी। (२) **तल्पारोहणं**—परस्त्री गमन; व्यभिचार। (३) **ब्रह्म-हत्या**—ज्ञानीका वध करना; ज्ञानके प्रचारमें प्रतिबंध करना। (४) **भ्रूण-हत्या**—बालकका वध, गर्भका वध करना; 'भ्रूण' धातुका अर्थ—'आशा' ऐसा पाणिनीमुनीका दिया

हुआ धातुपाठमें हैं । To hope, to trust आशा करना, विश्वास करना ये अर्थ सब कोशोंमें हैं। इससे 'भ्रूण' के अर्थ—hope आशा, trust विश्वास, confidence भरोसा इस प्रकार होते है । अर्थात् 'भ्रूण-हत्या' का अर्थ—breach of faith विश्वास-घात; treachery धोखेबाजी; perfidy बेइमानी; hope-less-ness निराशा ऐसा भी हो सकता है। विश्वास-घात करना भी बडा पाप है। (५) सुरा-पानं—शराब पीना। (६) दुष्कृतस्य कर्मणः पुनः पुनः सेवा—दुराचारको वारंवार करते जाना। किसी समय मनुष्यसे दुराचार होता है, परन्तु ज्ञानीके कहनेके पश्चात भी वारंवार दुराचार करते जाना, यह बहुत बुरा है। (७) पातके अनृतोद्यं—पातक करने के पश्चात, उसको छिपानेके लिये, असत्य बोलकर अपने आपको बचानेका यत्न करना ॥ विद्वानोंकी मानी हुई ये सात वैदिक मर्यादाएं हैं। इनमेंसे किसीका उल्लंघन करनेसे भी मनुष्य पतित होता है। इसका वर्णन निरुक्त नै. ६।२८ में देखने योग्य है ॥

जो धार्मिक मनुष्य अपने इंद्रियोंको शांत रखता है वह प्रगतिके दृढ भूमी पर स्थिर रहता है। 'धरुण' शब्दसे धारण और पोषणकारक धार्मिक शक्तियां समझी जाती हैं। 'उप म' का अर्थ उपमा देने योग्य, आदर्श जीवन। 'नीड' शब्द मूलतः 'नील' शब्द है। 'इल' धातुका अर्थ 'शांति प्राप्त करना' है। निःशेष, संपूर्ण शांति प्राप्त करना 'नी+इल' का तात्पर्य है। 'नी+ईड' का अर्थ पूर्णतासे स्तुति करने योग्य, स्तुत्य ऐसा हो सकता है। 'सर्ग' का अर्थ Creation उत्पत्ति; 'वि-सर्ग' का अर्थ 'न-उत्पत्ति non-creation अनुत्पत्ति, उत्पत्तिकी विरोधी स्थिति। 'पथां वि-सर्ग' का अर्थ 'जहां अनेक मार्गोंका झगडा नहीं होता है' (where there are not many ways to puzzle the confounded traveller) धर्मका सीधा एक राजमार्ग होता है। मतमतांतरोंके भ्रमजाल मचानेके कारण अनेक मार्ग होते हैं जिनमें मनुष्य भ्रांत होकर फंस जाता है। जहां भिन्न मतोंके भिन्न मार्गोंका झंझटा नहीं हुआ उस मूल निश्चित धार्मिक अवस्था का नाम 'पथां वि-सर्ग' है। अस्तु।

इन मंत्रोंसे पता लग जायगा कि 'मद्य-पान' वेदको संमत नहीं। मद्य-

पान से अवनति होती है ऐसा स्पष्ट आदेश उक्त मंत्रोंमें है। वेदमें परस्पर विरोधी उपदेश नहीं है। इसलिये मद्यपानका निषेध होनेके पश्चात् परिशेषसे 'शुद्ध-जल-पान; अथवा नारीकेल-जल पान' हि 'सुरा' शब्दसे यहां अभीष्ट है, यह निश्चय समझना चाहिए। भ्रमजालके वाक्योंसे कोई न फंस जाय, इसलिये यहां 'सुरा' शब्दके विषयमें इतना लिखना पडा है। 'सु' धातुसे 'सुरा' शब्द बनता है जिसका अर्थ (to distil) रसकी शुद्धि करना है।

'(कीलालाय) उत्तम पेयके लिये (सुरा-कारं) शुद्ध जल बनानेवालेको प्राप्त करो।' (For best drink, approach one who prepares distilled water.)

स्वास्थ्य–विभाग

(Department of public health.)

शारीरिक स्वास्थ्य Bodily Health.

"(२६) पवित्राय भिषजम्।" [५६]

'(पवित्राय) शुद्धताके लिये (भिषजं) वैद्यको प्राप्त करो।' शुद्धता रखनेसे शरीरमें तथा नगरोमें रोग नहीं होते। शुद्धता हि रोगोंको दूर करानेवाली है। जो रोगोंसे बचना चाहते हैं वे शरीरके अंदर, शरीरके बाहर तथा नगरोंके अंदर और बाहर अत्यंत स्वच्छता रखे। ऋतुओंके अनुकूल स्वच्छता करनेके नियम वैद्य जानते हैं। इसलिये शुद्धताके कार्योंके लिये वैद्योंको प्रयुक्त करना चाहिए। (For cleanliness, approach a Physician) भिषक् उसको कहते हैं कि ('बिभेत्यस्माद् रोगः इति भिषक्।') जिससे रोग डरते हैं, जिसके भयसे बीमारियां डरके मारे दूर भागती हैं; वह भिषक् होता है।

आचार-स्वास्थ्य।

(Health of character.)

"(२७) दुष्कृताय चरकाऽऽचार्यम्।" [१४१]

'(दुष्कृताय) दुराचार, पाप हटानेके लिये (चर-क-आचार्यं) चाल-

चलनके आचारोंकी शिक्षा देनेवालेको प्राप्त करो ।' (For curing wickedness appoint one who mends the character of the public.)

भाषामें चतुर्थी विभक्तिका दो प्रकारसे उपयोग होता है । जैसा— 'ज्वरके लिये औषध' अर्थात् 'ज्वरको हटानेवाला औषध'। तथा 'पुष्टिके लिये औषध' अर्थात् 'पुष्टिकारक औषध'। इसी प्रकार यहां 'दुष्कृताय' अर्थात् 'दुराचारोंको दूर करनेके लिये' ऐसा समझना चाहिए, तथा 'पवित्राय' का अर्थ 'पवित्रता बढानेके लिये' ऐसा मानना उचित है। इसी प्रकार विशेष स्थानोंपर आगे भी समझना ।

आरोग्यके लिये शरीर तथा नगरमें अंदर बाहरकी शुद्धता चाहिए उसी प्रकार स्वभावकी भी शुद्धता चाहिए। बुरे स्वभाव (Bad character) के कारण भी नाना प्रकारके रोग होते हैं । बुरे स्वभावको ठीक करनेवाले आचार्यको 'चरकाचार्य' कहते है। 'चर, चल' का अर्थ चालचलन होता है । 'आचार्य' का अर्थ—(आचारं ग्राहयति, आचिनोति अर्थान्, आचिनोति बुद्धिम् । निरु. १।४।)- जो लोकोंद्वारा सदाचारोंका ग्रहण कराता है, जो सत्य पुरुषार्थोंको प्रकाशित करता है, जो बुद्धिका विकास करता है, वह आचार्य कहलाता है। जनताके बुरे स्वभावको दूर करके, उनमें उत्तम शीलकी स्थापना करनेका इस आचार्यका कर्तव्य होता है।

नागरिक-शासन-विभाग ।

(Civil administration.)

"(२८) क्षेमाय विमोक्तारम् ।" [९५]

'क्षेम' का अर्थ-Peace शांति, welfare सुख, safety, security संरक्षण, सुरक्षितता, protection संरक्षण, पालन ।

'विमोक्ता' का अर्थ—Liberator स्वतंत्रता करनेवाला, स्वातन्त्र्यका दाता, freedom-giver स्वाधीनताकी स्थापना करनेवाला।

'(क्षेमाय) शांति, सुरक्षितता तथा पालनके लिये (विमोक्तारं) स्वतंत्रताकी स्थापना करनेवालेको प्राप्त करो।' (For peace, security and protection appoint a liberator.)

नागरिक शासनके लिये व्यक्तिकी स्वतंत्रता, व्यक्तिकी सुरक्षितता तथा व्यक्तिका पालन होनेकी आवश्यकता है। जहां इनकी स्थापना नहीं होगी वहांका शासन अभ्युदयकारक नहीं हो सकता। स्वतंत्रताके अभिमानी पुरुषोंको इस कार्यके लिये चुनना चाहिए।

"(२९) स्वर्गाय लोकाय भाग-दुघम्।" [८९]

'(स्वर्गाय लोकाय) उत्तम वर्गके लोकोंके लिये (भाग-दुघं) विभागके अनुसार बांटनेवालेको प्राप्त करो।' 'स्वर्ग' का अर्थ 'सु-वर्ग' उत्तम वर्ग, उत्तम श्रेणी। 'स्वर्ग लोक' का अर्थ 'उत्तम श्रेणीके लोक, उत्तम श्रेणीके लोकोंका प्रदेश।' 'भाग-दुघ्' अपने भागकाहि दोहन करनेवाला। 'दुह्' धातुका अर्थ दोहन करना, दूध निकालना। इससे 'दुघ्' बना है। गायके चार स्तन होते हैं उनमें दो बछडेकेलिये तथा दो मालिकके होते हैं। दूध निकालनेवालेको उचित होता है कि बछडेका भाग बछडेके लिये रखकर अपनेहि भागका* दूध निकाले। यही 'भागका दोहन' है। राजाकी प्रजा गौ है। राजा प्रजाका दोहन करता है। जितना भाग प्रजासे दोहना उचित है उतनाहि दोहना चाहिए। जो अपने भागके अनुकूलहि दोहता है वह 'भाग-दुघ्' कहलाता है। राजपुरुषोंके विषयमें भी यही बात जाननी उचित है; वह देश स्वर्गधाम बनता है कि, जहां प्रजासे योग्य विभागकाहि दोहन किया जाता है। अर्थात् वह देश नरक बन सकता है, कि जहां योग्य विभागसे अधिक प्रजाका दोहन होता हो। (For better-ment of people appoint one who draws the due portion only.)

"(३०) प्रतिश्रुत्कायै अर्तनम्।" [१४३]

'(प्रति-श्रुत्कायै) प्रतिज्ञा, वादा, यकरार आदिके लिये (अर्तनं)

सरल स्वभाववालेको रखो । (For promise, appoint a straight forward man.)

'ऋत्' धातुसे 'अर्तन' शब्द बनता है। 'ऋत्—जुगुप्सायां कृपायां च ।' बुराईकी निंदा और भलाई पर कृपा करनेवाला 'अर्तन' कहलाता है। जो ठीक है वही कहनेवाला, छोटे बडेका पक्षपात न करता हुआ, ठीक न्यायानुकूल चलनेवाला 'अर्तन' होता है। (Righteous.)

"(३१) महसे ग्राम-ण्यम् ।" [१५६]

'(महसे) शक्तिके लिये (ग्राम-ण्यं) ग्रामके नेताको रखो ।' (For power, appoint one leader for every village.)

ग्राम, नगर, पत्तन, पुरी आदिकी उत्तम व्यवस्था रखनेके लिये तथा ग्रामकी सामाजिक संघशक्ति बनानेके लिये प्रत्येक ग्रामके लिये एक एक मुखिया रखो ।

"(३२) भूम्ने परिष्कन्दम् ।" [८६]

'प्रत्येक (भू-म्ने) भूमिके विभाग, प्रांत, जिला, तालुका आदिके लिये (परि-स्कंदं) एक एक भ्रमण करनेवाला रक्षक रखो । ' (For every district appoint one travelling officer.)

'भू-मन्' का अर्थ—a territory देश, district प्रांत। 'परि' अर्थात् चारों ओर 'स्कंदं' अर्थात् भ्रमण करके निरीक्षण करनेवाला। प्रत्येक प्रांतपर सबके कार्यका निरीक्षण करनेकेलिये एक भ्रमण करने-वाला निरीक्षक रखना चाहिए ।

"(३३) महसे अभि-क्रोशकम् । " [१५८]

(महसे) शक्तिकेलिये (अभिक्रोशकं) घोषणा करनेवालेको रखो। (For power appoint a herald.)

'अभि-क्रोशक' का यह कार्य होता है कि जनताको सबसे पहिले अपने कर्तव्यके लिये जगाना, सच्ची बातकी सार्वजनिक घोषणा करना, शांतिकी स्थापना, युद्धकी तैयारी अथवा सुलह करना इ० ।

"(३४) क्रोधाय निसरम् ।" [९२]

(क्रोधाय) क्रोधको हटानेके लिये (नि-सरं) दान कर्ताको रखो। क्रोधको शांत करनेके लिये दान, नजर, नजराणा दीजिए।

"(३५) शोकाय अभिसर्तारम् । " [९४]

(शोकाय) तेजके लिये (अभि-सर्तारं) अग्रगामीको रखो। (For heat–animation–appoint a progressive man.) यहां 'शोक'का अर्थ जनताके अंदरका तेज वीर्य उत्साह है। शोकका अर्थ रोना दुःख करना होता है परंतु यहां 'तेज' ऐसा ही अर्थ है। 'शोक' शब्दका यह अर्थ वेदमें कई स्थानोंमें है, देखिएः—

यस्ते शोकाय तन्वं रिरेच क्षरद्धिरण्यं शुचयो नु स्वाः ॥
अथर्व, ५।१।३

(शोकाय) तेजके लिये जो तेरे शरीरको प्राप्त होता है वह शरीर प्रवाही सुवर्णके समान अपने शुद्ध प्रकाशसे युक्त है।' इस प्रकार 'शोक' का अर्थ तेज, उष्णता, गर्मी है।

कोशविभाग।

(Department of accounts and treasury.)

"(३६) निर्ऋत्यै कोश-कारीम् ।" [९९]

(निर्ऋत्यै) आपत्तिके लिये (कोश-कारीं) धनकोशके व्यवस्थापकको रखो। (For difficulty reserve the treasury) राजाके पास स्थिर धनकोश सदा रहना चाहिए। जिस समय राष्ट्रपर आपत्ति आ जावे, विनाशका समय प्राप्त होवे, उस समय उस स्थिर धनकोशसे द्रव्य का व्यय किया जावे। राजालोक अपने ऐपआरामके लिये राष्ट्रके धन-कोशसे जो खर्च करते हैं, वह ठीक नहीं, ऐसा इस आज्ञासे पता लगता है। राष्ट्रकी कठिनता दूर करके लोकोंको सुख पहुंचानेके लिये हि राष्ट्र-कोशका व्यय होना चाहिए।

"(३७) महसे गणकम् ।" [१५७]

(महसे) शक्तिके लिये (गणकं) गिननेवालेको रखो (For power appoint an accountant) राष्ट्रनिधिकी गिनती करनेसे धनकी शक्तिका ज्ञान होता है। इसलिये अपनी शक्तिकी गिनती सदा रखनी चाहिए और इस कार्यके लिये एक गिनती करनेवाला निश्चित होना चाहिए। हर एक शक्तिके विषयमें यह आज्ञा लाभदायक हो सकती है। गिनती होनेसे प्रत्येक शक्तिका प्रमाण ध्यानमें आ सकता है। और जो न्यून हो उसको बढानेका प्रयत्न किया जा सकता है।

ख-गोल-ज्योतिष-विभाग।

"(३८)प्रज्ञानाय नक्षत्र-दर्शम् ।" [५७]

(प्रज्ञानाय) विशेष ज्ञानके लिये (नक्षत्र-दर्शं) नक्षत्रोंको देखनेवाले अर्थात् खगोल-ज्योतिष-विद्या जाननेवालेको रखो।

" (३९) दिवे ख-लतिम् । [१६७]
(४०) सूर्याय हर्यक्षम् । [१६८]
(४१) नक्षत्रेभ्यः किर्मीरम् । [१६९]
(४२) चन्द्रमसे कीलासम् ।" [१७०]

(दिवे) खगोलके लिये (ख-लतिं) आकाश-गति जाननेवालेको रखो। अर्थात् आकाशस्थ गोलोंकी गतिको अच्छीप्रकार जाननेवालेको द्युलोकके निरीक्षणके लिये रखो। (सूर्याय) सूर्यके लिये (हरि-अक्षं) हरे रंगके आंखवाले को रखो। सूर्यका वेध करनेके लिये हरे रंगके आंख-वालेको रखो। हरे रंगके शीशेके साथ (deep green glass) सूर्यका वेध लेनेसे आंखको हानी नहीं होती। नक्षत्रोंके लिये (किर्मीरं) नारंगी रंगका धारण करनेवालेको रखो। (orrange) नारंगी रंगके शीशेके

साथ नक्षत्रोंका वेध करना उचित होगा। चंद्रके लिये (कीलासं) श्वेत वर्णको प्रयुक्त करो।

ज्योतिष विद्या जाननेवालोंको उचित है कि वे इन मंत्रोंका विचार करें और इन संकेतोंका स्पष्टीकरण करें। साधारण वाचककी मति इस विषयमें नहीं चल सकती।

"(४३) नर्माय पूंश्चलम्। [१५३]*
(४४) नर्माय रेभम्।" [१५]*

(नर्माय) मर्दानी खेलोंके लिये (पूं चलूं) लोकोंमें हलचल करनेवालेको रखो। तथा (रेभं) वक्ताको रखो (For manly sports, appoint one who agitates among the people and who is an orator.)

'नर्म' शब्द 'नृ-मनू' से बनता है। जिसका अर्थ मर्दानी खेल (manly sports) है। 'पूंसः मनुष्यानि चालयति।' जो मनुष्योंको संचालित करता है। लोकोंमें व्याख्यानद्वारा जो विशेप प्रभाव और उत्साह उत्पन्न करता है।

स्त्री-विभाग।

(Department of female-welfare.)

"(४५) वत्सराय विजर्जराम्। [१०७]
(४६) संवत्सराय पर्यायिणीम्। [१०३]

---

* ये मंत्र क्षत्रिय विभागमे भी रखे जा सकते है। मर्दानी खेलोंकी सबको आवश्यकता है। इसलिये सामान्य प्रकरणमे भी रखे जा सकते हैं। हलचल और वक्तृत्वका ब्राह्मणत्वके साथ विशेष संबध दीखनेके कारण यहा रखे हैं। परतु यह कोई प्रबल हेतु नही है।

(४७) परिवत्सराय अ-विजाताम् । [१०४]
(४८) इदावत्सराय अतीत्वरीम् । [१०५]
(४९) संवत्सराय पलिक्नीम् । [१०८]
(५०) इद्वत्सराय अतिष्कद्वरीम् । [१०६]

(वत्सराय) पांच वर्षोंके एक युगके लिये (वि-जर्जरां) वृद्ध स्त्रीको रखो। (संवत्सराय) प्रथम वर्षके लिये (पर्यायिणीं) काल क्रम जाननेवाली स्त्रीको रखो। (परिवत्सराय) द्वितीय वर्षके लिये (अ-विजातां) ब्रह्म-चारिणी कुमारी विदुषीको रखो। (इदावत्सराय) तीसरे वर्षके लिये(अती-त्वरीं) शीघ्र उन्नति करनेवाली विदुषीको रखो। (संवत्सराय=अनुवत्सराय) चतुर्थ वर्षके लिये (पलिक्नीं) सफेद बालोंवाली वृद्ध स्त्रीको रखो। (इद्वत्सराय) पंचम वर्षके लिये (अति-ष्कद्वरीं) अत्यंत ज्ञानी स्त्रीको रखो।

पांच पांच वर्षोंका एक एक युग होता है। स्त्रियोंकी उन्नति स्त्रियोंको हि सोचनी चाहिए। इसलिये पांच वर्षोंके एक युगके लिये एक ज्ञानी कर्तव्याकर्तव्य जाननेवाली स्त्रीको अध्यक्ष निश्चित करके, उसके आधीन कार्य करनेके लिये प्रतिवर्ष अलग अलग स्त्रीको रखना चाहिए। पहले वर्ष पूर्व क्रमको जाननेवाली, दूसरे वर्ष विदुषी कुमारिका, तीसरे वर्ष शीघ्र उन्नति करनेवाली, चौथे वर्ष वृद्धा, पांचवे वर्ष अत्यंत ज्ञानी स्त्रीको रखना।

ये सब क्रमपूर्वक आकर अपने अपने वर्षका कार्य उस वृद्धा अध्यक्ष स्त्रीके नीचे करें। किसीसे मर्यादाका उल्लंघन न कराना अध्यक्षाका कर्तव्य है तथा अपने अनुभवसे स्त्रीजातिकी उन्नति सोचना और अपने सहायक मंत्रियोंद्वारा उद्दिष्ट कार्य सिद्ध करना। सब प्रकारके स्त्रियोंको सब अधिकार पांच वर्षोंमें क्रमपूर्वक प्राप्त होनेके कारण किसी स्त्रीको यह दुःख न रहेगा कि, हमारे दुःख अपनी सभामें बतानेका अवसर न मिला। वृद्धा, तरुणी, मध्यम आयुवाली, शीघ्र प्रगति करनेवाली गरम स्वभाववाली, आहिस्ते आहिस्ते उन्नति चाहनेवाली नरम स्वभाववाली, ऐसे सब स्त्रियोंको क्रमशः

प्रतिवर्ष अधिकार प्राप्त होने हैं। जिससे सबके प्रयत्नसे स्त्रीजातीकी उन्नति हो सकती है।

पुरुषजातिके लिये भी इस तत्वपर एक संस्था स्थापन होनी उचित है। जहां पांच वर्षोंके लिये एक अध्यक्ष हो, तथा गरम, नरम, वृद्ध, तरुण, मध्यमवयवाले प्रतिवर्ष कार्यभार चलानेके लिये उसको सहायता देते रहें। कल्पना अच्छी है। विचारी स्वाध्यायशील विद्वान इसको विशेष सोचें।

ये स्त्री-विभागके मंत्र सामान्य प्रकरणमें भी रखे जा सकते हैं। क्यों कि सब वर्णोंके स्त्रियोंकी उन्नति करनेके ये साधन हैं।

इस विषयमें विचारी पाठक अधिक सोच सकते हैं॥

(२) क्षत्रिय-वर्ण-विभाग।

(Military and Police department.)

"(१) क्षत्राय राजन्यम्।" [२]

'क्षत्र' शब्दका अर्थ=Dominion राज्य, power शक्ति; supremacy प्रधानता; government राज्यशासन; governing body राज्य-शासक मंडल; warrior, soldier लढवय्या क्षत्रिय; martial spirit, heroic valour शौर्यप्रताप; bravery शौर्ययुक्त धैर्य। 'क्षत-त्राणात् क्षत्रं। क्षत्रेण युक्तः क्षत्रियः।' क्षत अर्थात् व्रणसे बचानेवाला शौर्य क्षत्र कहलाता है, यह शौर्य जिसके पास होता है, वह क्षत्रिय होता है। 'क्षणु-हिंसायां' इस धातुसे 'क्षत' शब्द बनता है। हिंसा, दुःख, कष्ट, हानी, अवनति' आदि उसका आशय है। अवनतिसे जो बचाता है, शत्रुओंसे जो अपने राष्ट्रको बचाता है वह 'क्षत्+त्र-इय' (क्षत्रिय) होता है। जिन गुणों से राष्ट्रका स्वत्व रहता है, और देशका संरक्षण होता है उन गुणोंका नाम 'क्षत्र' (क्षत्+त्र=Protection from danger, destruction or peril.)

(क्षत्राय) शौर्यवीर्यके लिये (राजन्यं) क्षत्रियको प्राप्त करो। (For heroic valour, appoint or approach a warrior.)

सुवीरका लक्षण।

नयसीद्वति द्विषः कृणोष्युक्थशंसिनः॥
नृभिः सु-वीर उच्यसे॥ ऋ. ६।४५।६॥

'(द्विषः) द्वेष करनेवाले शत्रुओंसे (अतिनयसि) बचाकर पार ले जाते हो (इत उ) और निश्चयसे लोकोंको (उक्थ-शंसिनः) स्तुति करने योग्य (कृणोषि) करते हो, इसलिए (नृभिः) सब मनुष्य अथवा सब नेता लोक तुमको (सु-वीरः) उत्तम शूर (उच्यसे) कहते हैं।'

अर्थात् शूर पुरुषका यही कार्य है कि, वह लोकोंका शत्रुओंसे संरक्षण करे और उनको एक ईश्वरके उपासक बनावे। तथाः—

शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान् जेता पवस्व सनिता धनानि ॥
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाळ्हः साह्वान् पृतनासु शत्रून् ॥

ऋ. ९।९०।३ ॥

'(शूर-ग्रामः) शौर्य वीर्यादि क्षात्रगुणोंसे युक्त (सहावान्) सहन शक्तिसे युक्त, (जेता) विजयशाली, (धनानि सनिता) धनोंका उत्तम विभाग करनेवाला, (तिग्मायुधः) जिसके भयंकर शस्त्रास्त्र हैं, (क्षिप्र-धन्वा) धनुष्ययुद्धमें प्रवीण (समत्सु अषाळ्हः) युद्धोंमें शत्रुओंके लिये असह्य परंतु (पृतनासु शत्रून् साह्वान्) युद्धोंमें शत्रुओंके साथ मुकाबला करनेवाला जो होता है वह (सर्व-वीरः) सब प्रकारसे वीर कहा जाता है । हे ईश्वर ! इन गुणोंसे हमको (पवस्व) पवित्र करो ।' तथा—

धृतव्रताः क्षत्रिया यज्ञनिष्कृतो बृहद्दिवा अध्वराणामभिश्रियः ॥
अग्निहोतार ऋतसापो अद्रुहोऽपो असृजन्ननु वृत्रतूर्ये ॥

ऋ १०।६६।८ ॥

'(धृत-व्रताः) व्रत धारण करनेवाले, नियमोंके अनुसार चलनेवाले, (यज्ञ–निष्कृतः) सत्कार–संगति–दानात्मक सत्कर्म करनेवाले, (बृह-द्दिवाः) अत्यंत तेजस्वी, (अ-ध्वरणां अभिश्रियः) अहिंसामय कर्मोंसे शोभनेवाले, (अग्नि–होतारः) हवन करनेवाले (ऋत-सापः) सत्य-निष्ठ, (अ-द्रुहः) धोखा न करनेवाले जो क्षत्रिय होते है, वे (वृत्र-तूर्ये) शत्रुके साथ होनेवाले युद्धमें (अपः अनु असृजन्) अपने सब कर्म ठीक करते हैं ।' तथाः—

असमं क्षत्रं असमा मनीषा । ऋ. १।५४।८ ॥

'अतुल क्षात्र तेज और अतुल बुद्धि हो ।' शौर्य भी बहुत होवे और बुद्धि भी बडी उत्तम होनी चाहिए । बुद्धिके बिना केवल शौर्य कोई कामका नहीं । तथाः—

वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः । तै. सं. १।७।१० ॥

यजु. ३।२३ ॥ शत. ब्रा. ५।२।२।५

'(वयं) हम सब (राष्ट्रे) अपने राष्ट्रमें (पुरः–हिताः) अग्रभागमें

होकर (जागृयाम) जागते रहें ।' अपने अपने राष्ट्रकी उन्नतिके लिये सब देशके लोक सदा जागते रहें, अर्थात् अपनी राष्ट्रीय उन्नतिके विषयमें कोईभी बेफिकिर न रहे । तथा—

महते क्षत्राय महत आधिपत्याय महते जानराज्याय ।
यजु. ९।४०। तै. सं. १।८।१०

'बडे (क्षत्राय) शौर्यके लिये, बडे (आधिपत्याय) अधिकारके लिये तथा बडे (जान-राज्याय For re-public) जनताके शासनके लिये' प्रयत्न होना चाहिए । यहांका 'जान-राज्य' शब्द लोकशासन (government by the people and for the people.) अर्थात् सब लोकोंकी अपनी स्वसंमतिसे अपने उद्धारके लिये चलाया हुआ शासनका भाव बताता है ।

अस्तु । इस प्रकार शूरके शौर्यवीर्यआदि गुणोंका वर्णन वेदमंत्र कर रहे हैं, वह सब यहां देखना उचित है ।

"(२) बलाय अनु-चरम् ।" [८५]

(बलाय) सैन्यके लिये (अनु-चरं) आज्ञाके अनुसार चलनेवालेको रखो । (For army, appoint a good follower.)

" (३) बलाय उप-दाम् ।" [५०]

(बलाय) शक्तिके लिये (उप-दां) सहारा देनेवालेको रखो (For force keep, supporters.)

"(४) नरिष्ठायै भीमलम् ।" [१४]

'नरिष्ठा' का अर्थ—(१) नरि-ष्ठा अर्थात् मनुष्योंमें स्थिरता ॥ 'स्थ, स्था, स्थान' का अर्थ—State, condition अवस्था, स्थिति, locality लोकोंके अंदरका स्थान; a country, region, district देश, प्रांत, office, rank, dignity ओहदा, वर्ग, महत्व; object इष्ट उद्देश; a stamina of a king-dom (i. e. army, trea-

sure, town and territory) राष्ट्रीय बल, राष्ट्रीय तेज, देशका सत्व ॥ 'नरि–ष्ठा'का अर्थ—मनुष्योंके अंदरका सत्व ॥

(नरि–ष्ठायै) जनता के राष्ट्रीय सत्वके लिये (भीमलं) महाप्रतापीको रखो। (For a stamina of a kingdom, appoint terrible brave persons.)

"(५) नारकाय वीर-हणम् ।" [६]

'नार–क' का अर्थ—'नराणां समूहो नारः।' मनुष्योंके समुदायका नाम नार होता है। Multitude of men मनुष्योंका संघ। 'नारं जन-संघं करोति इति नार–कः' जो मनुष्योंका संघ बनाता है वह नारक कहलाता है। नर=leader नेता।

'वीर-हन' का अर्थ–शत्रुके शूर पुरुषोंको चुन चुन कर मारनेवाला। (Killer of brave men of the enemy, sharp-shooter)

(नारकाय) सैन्य संघके लिये (वीर-हणं) शत्रुवीरोंको मारनेवालेको रखो। (With a body of troops appoint sharp-shooters, who can kill brave warriors of the enemy.)

"(६) प्र-मदे कुमारी-पुत्रम् ।" [१८]

'प्रमद' का अर्थ—Violent जबरदस्त, प्रबल, प्रचंड; strong बलवान; joy, pleasure सुख, खुशी।

'कुमार' का अर्थ—A prince राजपुत्र; god of war युद्धका देव; 'कु–मारः'—(कुत्सितः मारः यस्य) जिसका हमला बहुत बुरा है, (one whose attack is very horrible.)

'कुमारी' का अर्थ—राजपुत्री, युद्धकी देवी, दुर्गा अर्थात् पास जानेके लिये कठिन, ऐसी स्त्री कि जिसका तेज सहन करना बहुत कठीन है।

'कुमारी–पुत्र' का अर्थ—बडी शूर प्रभावशाली स्त्रीका पुत्र। 'पुत्+त्र' अर्थात् कष्टोंसे बचानेवाला वास्तवमें 'पु-त्र' कहलाता है। 'कुमारी'

शब्दका अर्थ अविवाहिता लडकी ऐसा प्रचलित है वह यहां अभीष्ट नहीं है ।

(प्रमदे) बलवान शत्रुके लिये (कु–मारी–पु–त्रं) शूर स्त्रीके वीर पुत्रको रखो । (For a violent enemy, appoint a brave son of a brave lady)

"(७) पुरुषव्याघ्राय दुर्मदम् ।" [३३]

(पुरुष–व्याघ्राय) मनुष्योंके शेरके लिये (दुर्–मदं) प्रचंड आवेश-वालेको रखो । (For a tiger among men, appoint a powerful strong man.) पुरुष-व्याघ्र उनको कहते हैं कि जो अपनी शूरवीरताके कारण तथा धीरताके कारण मुखियापनको प्राप्त हुआ है । इस प्रकारके शत्रुके साथ अपने प्रचंड वीरको सामनेके लिये रखना चाहिए ।

"(८) पिशाचेभ्यो वि-दल-कारीम् ।" [३९]

(पिशाचेभ्यः) पिशाचोंके लिये (वि-दल-कारीं) विशेष प्रकारकी सैन्यकी रचना करनेवालेको रखो । (For blood-thirsty men, appoint one who is expert in making special arrangment of his troops.)

'पिशितं आचामतीति पिशाचः ।' रक्तमांसभक्षक, A man-eater, cannibal नरमांसभोजी मनुष्य, कच्चा मांस खानेवाला तथा रक्त पीनेवाला मनुष्य पिशाच कहलाता है ।

'विदल–कारी' का अर्थ 'विभेदन करनेवाला' । (One who makes division, split-maker) रक्तांमसभोजी अथवा खून-चूस आदमीयों-के लिये अर्थात् उनको स्वाधीन काबू करनेके लिये ऐसे आदमीको रखो कि, जो उनमें विभेद उत्पन्न कर सके । (For blood-thirsty men appoint one who can cause splits among them.)

"(९) यातु-धानेभ्यो कण्टकी-कारीम् ।" [४०].

'यातु-धान' का अर्थ—चोर, डाकू, लुटेरे, धानकी चोरी करनेवाले। जो मार्गोंमें रहकर प्रवासियोंको लूटते रहते हैं।

'कण्टकी' का अर्थ—Vexatious, troublesome, कष्ट देनेवाला मनुष्य; an enemy of good government सुराज्यका विरोधी; an enemy of order सुव्यवस्थाका विरोधी ॥ 'कंटकः'—कांटा, चुभनेवाला पदार्थ, चुभनेवाला नोकदार शस्त्र ॥ 'कंटकिन्'=नोकदार शस्त्रोंको धारण करनेवाला सैनिक ॥ 'कंटकी-कारी'=नोकदार शस्त्रधारी सैनिकोंका सैन्य तैयार करनेवाला।"

(यातुधानेभ्य) डाकुओंके लिये (कण्टकी-कारीं) भालेवाले सैन्य-को रखो। (For plunderers appoint spears-men or lancers.)

अथवा इस मंत्रका यह भी अर्थ हो सकता है कि, (यातुधानेभ्यः) डाकुओंका बंदोबस्त करनेके लिये (कंटकी-कारीं) राज्यव्यवस्थाका विरोध अथवा दंगा फिसाद, करनेवाले जो लोक होते हैं, उनकोहि रखो। अर्थात् उनसे यह काम लो, ताकि उनका सब बल डाकुओंको हटानेमें लगेगा और नागरिकोंके कष्ट भी दूर होंगे।

"(१०) ईर्यताया अकितवम् ।" [३८]

'ईर्यता' का अर्थ—Movement हलचल; rising जागृतिकी हल-चल; agitation उन्नतिके लिये लोकोंकी हलचल; pronouncement, proclamation घोषणा; driving away the enemies शत्रुओंको दूर हटानेका प्रयत्न; activity for raising one's position अपनी अवस्थाको उच्च बनानेकी हलचल।

'ईर्यता' का अर्थ—Activity पुरुषार्थ करनेकी विलक्षण फूर्ती power शक्ति; energy प्रभावशाली बल; instigation प्रेरणा; destruction of enemies शत्रु-विनाश।

'कितवः' का अर्थ—A cheat धोकेबाज, कपटी, fraudulent मक्कार, फरेबी छली; crazy person निर्बल, पागल, संशयी; unsound अनिश्चित ज्ञानवाला ॥ 'अ-कितव' का अर्थ—जो धोकेबाजी, कपट, छल, मक्कारी, फरेबी न करता हो तथा जो बलवान, बुद्धिमान निश्चित ज्ञानवाला होता है उसको 'अ-कितव' कहते हैं। जुवेबाजको भी कितव कहते है और जो जुआ आदि हानिकारक खेल नहीं खेलता, उसको 'अ-कितव' कहते हैं।

'कितव' शब्दका 'ज्ञानी' ऐसा अर्थ पहले आ चुका है। 'कित्-ज्ञाने' इस धातुसे यह शब्द बनता है, 'न विद्यते अधिकः कितवः यस्मात् स अ-कितवः' अर्थात् 'जिससे अधिक ज्ञानी कोई नहीं, जहां जिस प्रकारका ज्ञान चाहिए वहां उस ज्ञानका उपयोग करके कार्यकी सिद्धि करनेमें प्रवीण' ऐसा भी इसका अर्थ हो सकता है। दोनों प्रकारके अर्थ देखकर पाठक विचारपूर्वक अर्थका निश्चय करें।

(ईर्यतायै) अपनी अवस्था उच्च बनानेके लिये (अ-कितवं) निश्चित ज्ञानवाले और धोकेबाजी न करनेवाले मनुष्यको प्रयुक्त करो। (For raising one's position approach or appoint one who is not a cheat, crazy or unsound person.)

"(११) दिष्टाय रज्जु-सर्पम्।" [२८]

'दिष्ट' का अर्थ—Military order, command, आज्ञा हुकुम, सैन्य संचालकका आदेश; direction हिदायत, आज्ञा; aim, goal इरादा, निशाना, अंतिम साध्य, अखीरी मतलब।

'रज्जु' का अर्थ—A rope, cord, string रस्सा, रस्सी, धागा, डोरी, line लकीर, रेषा, पंक्ति। 'रज्जु-सर्प' का अर्थ—रस्से परसे चढने उतरनेमें प्रवीण, निश्चित लकीर पर चलनेवाला।

(दिष्टाय) आज्ञाके लिये (रज्ज-सर्प) निश्चित मार्ग पर चलनेवालेको रखो। (For execution of order, appoint one who can go by the fixed line.)

"(१२) उत्सादेभ्यः कुब्जम्।" [५८]

'उत्साद' का अर्थ—Rising up-wards उन्नति करना, ऊपर उठाना; settlement निश्चित प्रबंधकी स्थिरता; elevation उन्नति; accomplishment पूर्णता, सिद्धि, over-throwing गिराना, पलटाना; destruction नाश, शत्रुविनाश ॥

'कुब्ज' का अर्थ—A curved sword तलवार जो सीधी नहीं होती परंतु जरासी आगे जाकर गोल होती है। a curved swordsman उक्त प्रकारकी तलवार चलानेवाला।

(उत्सादेभ्यः) शत्रुविनाशके लिये (कुब्जं) तलवार बहादरको रखो। (For destroying the enemies appoint good swordsmen.)

"(१३) पाप्मने सैलगम्।" [१४२]

'सैल' का अर्थ—'सेल अथवा सैल'—A kind of weapon एक प्रकारका शस्त्र। 'सैलेन सह गच्छति इति सैलगः' अर्थात् जो सदा अपने साथ शस्त्र धारण करता है वह 'सैल-ग' होता है।

'पाप्मन्'=पाप+मन्=का अर्थ—Injurious, hurtful दुःख देनेवाला, सतानेवाला; wickedness, sin, तेढेपन, पाप; crime गुन्हा; criminal गुन्हेगार।

(पाप्मने) गुन्हेगारके लिये (सैल-गं) शस्त्रधारिको रखो। (For criminals appoint an armed guard.)

"(१४) अवऋत्यै वधाय उपमन्थितारम्।" [७८]

'अव-ऋति' का अर्थ—Assault, attack हमला, धावा; envy शत्रुता, वैर, अदावत; abuse गाली देना, दुरुपयोग। 'अवऋति-वध' का अर्थ— शत्रुताके कारण हमला करके किया हुआ वध, (Murder by assaulting.)

मनु. उन्न. १०

(अव-ऋत्यै वधाय) हमला करके वध करनेवालेके लिये (उप-मंथितारं) खिलबिली मचानेवालेको नियुक्त करो (For an assailant appoint a stirrer.)

'उपमन्थिता' का आशय यह है कि, हमला करके वध करनेवाले दुष्टोंमें इस प्रकार खिलबिलीके साथ डर उत्पन्न करना कि वे फिर वैसा कर्म न करें, और शासनके भयसे कोई दुष्ट फिर ऐसे गुन्हे करनेके लिये प्रवृत्त न हो सके ।

राजनीति-विभाग ।

(Political diplomacy.)

"(१५) ऋतये स्तेन-हृदयम् ।" [८१]

'ऋति' का अर्थ—Enemy शत्रु; an army of the enemy शत्रुका सैन्य; an assault by an enemy शत्रुका हमला ।

(ऋतये) शत्रु सैन्यके लिये (स्तेन हृदयं) ऐसे मनुष्यको रखो कि, जिसका हृदय चोरके समान विचार गुप्त रखता है । (For dealing with the enemy appoint such a man as has a thievish heart.)

शत्रुके साथ व्यवहार करनेके समय, अथवा युद्धके समय खुलंखुला सब बातें तथा सब कृत्य नहीं करने चाहिए। उस समय सब विचार तथा सब व्यवहार बडे गुप्त रखने होते हैं; इसलिये ऐसे समय इन कार्योंके लिये ऐसे मनुष्य रखने चाहिए कि, जिनके हृदय चोरके समान होते हैं । चोर अपना सब व्यवहार जैसे छिपकर करता है वैसे जिनके व्यवहार गुप्त होते हैं । जो हृदयके गुप्त बातोंको छिपाकर रख सकता है, और किसी प्रकार भी अपने चेहरे आदिके भावोंसे उन गुप्त बातोंका प्रकाश नहीं करता वह मनुष्य 'स्तेन-हृदय' (secret-heart) कहलाता है ।

"(१६) वैरहत्याय पिशुनम् ।" [८२]

'पिशुन' का अर्थ—Indicator, one who points out बताने-

वाला, सूचना देनेवाला, one who evinces proves or makes evident सिद्ध करके बतानेवाला।

(वैर-हत्याय) शत्रुत्वके नाशके लिये (पिशुनं) अपनी बातको सिद्ध करके बतानेवालेको नियुक्त करो। (For removing enmity appoint one who points out the truth.)

सच्चाईको बतानेसे और दोनों तरफसे सच्चाईका स्वीकार करनेसे शत्रुत्वका नाश हो सकता है। यह मंत्र न्याय-विभागमें भी रखा जा सकता है। परंतु मैने इसको यहां इसलिये रखा है कि, इसका दूसरा भी एक अर्थ संभवनीय है:—

(वैर-हत्याय) शत्रुवीरोंका नाश करनेके लिये (पिशुनं) चुगलि करनेवालेको रखो। (For destruction of heroes of the enemy, appoint one who is a back-biter or tale-bearer.)

प्रबल शत्रुका नाश करनेका 'भेद' उपाय है। शत्रुके वीरोंमें आपसमें द्वेष उत्पन्न करनेके लिये चुगली करनेवाले लोकोंको रखना। जिससे, वह चुगलखोर चुगलियां कर करके, शत्रुके वीरोंमें झगडे खडे करके, शत्रुका बल घटायेगा। साम, दाम, दण्ड और भेद ये चार उपाय राजनीतिमें कहे हैं, उनमें 'भेद' उसको कहते हैं कि, जिन उपायोंसे शत्रुदलमें (Sowing dissensions) मतभेद उत्पन्न किये जाते है। विचारकी एकताके कारण बल बढता है, और विचारकी भिन्नता होनेके कारण बल घटता है। शत्रुके मनुष्योंमें आपसमें मतभेद, भिन्न विचार अथवा आपसके झगडे बढानेका काम करनेवालेको 'पिशुन' कहते है।

इस मंत्रके अर्थके विषयमें विचारी स्वाध्यायशील विद्वान अधिक सोच कर सच्चे अर्थकी खोज करें।

"(१७) विविक्त्यै क्षत्तारम्।" [८३]

'विविक्ति' का अर्थ—Separation विभिन्नता, भेदभाव; division पक्षभेद।

(विवित्त्यै) भेदभाव उत्पन्न करनेके लिये (क्षत्तारं) विभाग करनेवालेको रखो। (For making divisions appoint a splitmaker.)

"(१८) औपद्रष्ट्याय अनुक्षत्तारम् ।" [८४]

(औपद्रष्ट्याय) निरीक्षणके लिये (अनु-क्षत्तारं) निग्राणी करनेवाले परिचारकको रखो । (For superintendence appoint an attendant)

अपने अपने कार्य करनेके लिये नियुक्त किये हुए लोक ठीक प्रकार कार्य कर रहे हैं या नहीं इसका निरीक्षण करनेके लिये उस कामके लिये योग्य निरीक्षक रखने चाहिए। जो उन कार्य करताओंके पीछे पीछे रहकर उनके कार्यका अच्छी प्रकार निरीक्षण करते रहें।

"(१९) आध्यक्ष्याय अनुक्षत्तारम् ।" [७०]

(आध्यक्ष्याय) सबकी अध्यक्षता अर्थात् सबका निरीक्षण करनेके लिये (अनु-क्षत्तारम्) निरीक्षकको रखो। पूर्ववतहि इसका भाव प्रतीत होता है; परंतु यहां 'आध्यक्ष्य' शब्दसे निरीक्षकोंका परीक्षण करनेवालेका भाव दिखाई देता है।

क्षत्ता, अनुक्षत्ता ये शब्द तखाणोंके वाचक भी हो सकते हैं, परंतु इन अर्थोंका यह कोई संबंध नहीं दिखाई देता। इसका अधिक विचार विचारी पाठक कर सकते हैं। यदि 'तखाण' ऐसा अर्थ कोई करेंगे तो ये मंत्र शूद्रवर्गमें चले जायगे।

शस्त्र-विभाग।

"(२०) मेधायै रथकारम् । [१९]
(२१) शरव्यायै इषुकारम् । [२५]
(२२) हेत्यै धनुष्कारम् ।" [२६]

(२३) कर्मणे ज्याकारम् ।" [२७]

(मेधायै) शक्तिके लिये (रथ-कारं) रथीयों और रथ कर्ताओंको नियुक्त करो। (शरव्यायै) बाणोंकी वृष्टि करनेके लिये (इषु-कारं) बाण बनानेवालोंको प्राप्त करो। (हेत्यै) हथियारोंके लिये (धनुष्कारं) धनुष्य आदि बनानेवालोंको प्राप्त करो। (कर्मणे) युद्धके कार्योंके लिये (ज्या-कारं) धनुष्यकी डोरी आदि पदार्थ बनानेवालेको प्राप्त करो।

अर्थात् युद्धके सब साहित्यके लिये उस साहित्यके बनानेवालोंको रखो अथवा प्राप्त करो।

अश्वादि-बल-विभाग ।

"(२४) अ-रिष्टै अश्व-सादम् । [८८]

(२५) अर्मेभ्यो हस्ति-पम् । [६१]

(२६) जवाय अश्व-पम् ।" [६२]

(अ-रिष्टै) सुरक्षितताके लिये (अश्व-सादं) घोडे सवारको रखो (अर्मेभ्यः) गतिके लिये (हस्ति-पं) हाथि-सवारको रखो। (जवाय) वेगके लिये (अश्व-पं) घोडे सवार, साइस, अथवा घोडोंका पालन करनेवालेको रखो। इसी प्रकार 'हस्ति-प' शब्दसे हाथियोंका माहुत, हाथियोंका अच्छी प्रकार पालन करनेवाला आदि भाव समझने चाहिए। यहां योग्य अर्थकी खोज विचारी पाठक करें।

सभा-संमति ।

"(२७) आस्कंदाय सभा-स्थाणुम् ।" [१३७]

'आस्कंद' का अर्थ—Invasion चढाई, हमला; attack, assault, outrage हमला, धावा; battle, war युद्ध ।

'सभा-स्थाणुं' का अर्थ—A man who makes a firm assembly. जो स्तंभके समान सभाका आधार होकर सभाको स्थिर रखता है।

(आस्कंदाय) युद्धके लिये (सभा-स्थाणुं) सभाके आधारभूत पुरुषको प्राप्त करो । (For war approach a man who makes the assembly firm.)

युद्धके लिये लोक सभाकी अनुमति अथवा संमति लेनी होती है। इसलिये सभाके उन सभासदोंको प्राप्त करना, कि जो सभाके आधाररूप होते हैं । जिनके अनुकूल होनेसे सभाका मत अनुकूल होगा, तथा जिनके विरोधसे सभाका मत प्रतिकूल होनेकी संभावना होती है ।

अरण्य-विभाग ।

(Forrest department.)

"(२८) वनाय वन-पम् ।" [१५१]

(वनाय) वनके लिये (वन-पं) वनका संरणकरनेवालेको रखो । (For forests appoint a Conservator of foiest.)

"(२९) अन्यतो अरण्याय दाव-पम् ।" [१५२]

(अन्यतो अरण्याय) दूसरे प्रकारके बडे अरण्यके लिये (दाव पं) अग्निसे बचानेवालेको रखो । (For other thick wood appoint a forest-fire-guard.)

शहरोंके पास जो जंगल रखते हैं, जहां थोडे कष्टसे मनुष्य जाकर वनका विहार कर सकते हैं उन प्रदेशोंको वन कहते हैं । परंतु जो घनघोर जंगल होते हैं जहां साधारण मनुष्य विशेष कष्टके विना नहीं पहुंच सकते, उन बिकट वनोंको अरण्य कहते हैं ।

"(३०) पर्वतेभ्यः किंपुरुषम् [१२२]
(३१) सानुभ्यः जम्भकम् । [१२१]
(३२) गुहाभ्यः किरातम् ।" [१२०]

(पर्वतेभ्यः) पहाडोंके लिये (किंपुरुषं) साधारण पुरुषको रखो ।

(सानुभ्यः) पर्वतोंके ऊपरके स्थानोंके लिये (जम्भकं) धडाकेदार आदमीको रखो । (गुहाभ्यः) गुफाओंके लिये (किरातं) जंगली मनुष्यको रखो ॥

"(३३) नदीभ्यः पुंजिष्ठम् । [३१]
(३४) सरोभ्यो धैवरम् । [१११]
(३५) तीर्थेभ्यो आन्दम् । [११७]
(३६) यादसे शाबल्याम् । [१५५]
(३७) उत्कूलनिकूलेभ्यः त्रिष्ठिनम् ।" [९६]

(नदीभ्यः) नदियोंके लिये (पुंजि-ष्ठम्) संघोंमें रहनेवाले साधारण मनुष्यको रखो । (सरोभ्यः) सरोवरोंके लिये (धैवरं) धीवरको रखो । (तीर्थेभ्यः) तेरकर पार होनेवाले जलके स्थानोके लिये (आन्दं) बंध बनानेवालेको रखो । (यादसे) जलके साधारण स्थानोंके लिये (शाबल्यां) जंगली मनुष्यको रखो । (उत्कूल-निकूलेभ्यः) पानीके चढाव और उतारके स्थानोंके लिये (त्रि-स्थिनं) तीनों स्थानोंमें रहनेवालोंको रखो ।

पानीके चढावका एक स्थान, पानीके उतारका दूसरा स्थान तथा जहां चढाव और उतार नहीं होते ऐसा तीसरा स्थान । इन तीनों स्थानों पर जाने आनेवालोंकी सहायताके लिये व्यहारदक्ष मनुष्य रखने चाहिए शेष जलके स्थानोंके लिये उस उस स्थानके लिये योग्य मनुष्यको रखना चाहिए ।

"(३८) विषमेभ्यो मैनालम् ।" [११८]

(वि-समेभ्यः) विषम अर्थात् ऊंचे नीचे स्थानोंके लिये (मैनालं) स्थानोंको मिननेवालेको रखो । जिसको सब स्थानोंका ज्ञान है, ऐसे मनुष्यको रखो ताकि उससे सबको लाभ पहुंचे ।

"(३९) वैशन्ताभ्यो वैन्दम् । [११३]
(४०) नड्वालाभ्यः शौष्कलम् । [११४]
(४१) पाराय मार्गारम् । [११५]
(४२) आवाराय कैवर्तम् ।" [११६]

(वैशन्ताभ्यः) छोटे तालावोंके लिये (वैन्दं) खबरदारी करनेवाले को रखो, जो उन तालावोंके पानीको ठीक प्रकार शुद्ध रखे तथा चारों ओरकी सफाईके विषयमें खबरदारी रखे ।

(नड्वलाभ्यः) नरसलवाले स्थानोंके लिये (शौष्कलं) खुष्क करने वालेको रखो । जो नरसलोंको सुखाकर उन खुष्क नरसलोंसे बाण अथवा तीर बनाता है । (पाराय) नदी आदिके पार होनेके लिये (मार्गारं) मार्ग जाननेवालेको रखो । जो ठीक मार्गसे पार ले जा सकता तथा आगेका मार्ग भी बता सकता है । (आवाराय) पानीके स्थानोंमें आश्रयके लिये (कैवर्तं) जो पानीमें रहनेवाला होता है उसको रखो । 'के उदके वर्तते इति कैवर्तः' जो उदकमें रहता है, अर्थात् पानीमें सहायता करनेमें प्रवीण ।तैरना आदि अच्छी प्रकार जाननेके कारण जो दूसरोंको जलके डरसे बचा सकता है ।

"(४३) उप-स्थावरेभ्यो दाशम् ।" [११२]

(उप-स्थावरेभ्यः) उप-वन आदिके लिये (दाशं) निकृष्ट मनुष्यको रखो । अथवा (उप-स्थ-अ-वरेभ्यः) पास रहनेवाले कनिष्ठोंके लिये (दाशं-दासं) जाननेवाले (Knowing man) को रखो । अर्थात् जो उनकी व्यवस्था करनेकी पद्धति जानता है उसको रखो ताकि उनका प्रबंध ठीक प्रकार हो सके ।

"(४४) ऋक्षिकाभ्यो नैपादम् ।" [३२]

(ऋक्षिकाभ्यः) जंगली क्रूर पशुओंके लिये (नै-षदं)जंगली मनुष्यको रखो । वह उनका इंतजाम अच्छी प्रकार करे ।

"(४५) बीभत्सायै पौल्कसम् ।" [१२३]

(बीभत्सायै) क्रूर कर्मोंके लिये (पौल्कसं) अनाडी वन्य मनुष्यको रखो। इस मंत्रके अर्थके विषयमें अधिक विचार की आवश्यकता है।

नगर-पालना-विभाग।

"(४६) द्वार्भ्यः स्रामम् । [५२]
(४७) गेहाय उप-पतिम् । [४२]
(४८) भद्राय गृह-पम् ।" [६८]

(द्वार्भ्यः) दरवाजोंके लिये (स्रामं-श्रामं) परिश्रमी पुरुषको रखो। ताकि वह दरवाजोंका अच्छी प्रकार संरक्षण कर सके। (गेहाय) घरके लिये (उपपतिं–उपपालकं) सहायक संरक्षक (assistant guard) रखो। बडे महलोंमें द्वारके संरक्षणके लिये अलग तथा सब मंदिरके संरक्षणके लिये अलग मनुष्य हुआ करते हैं। (भद्राय) कल्याणके लिये (गृह-पं) घरोंका रक्षण करनेके लिये संरक्षक रखो। 'गृहान् पाति रक्षति इति गृह-पः' जो अनेक घरोंका संरक्षण करता है, अर्थात् महल्लेका संरक्षण करता है उसको 'गृह-प' कहते हैं।

सब महल्लेका एक संरक्षक हो, उसके आधीन घरोंके रक्षक काम करें तथा उनके नीचे द्वारोंके रक्षक अपना रखवालीका काम करें।

चार-विभाग।

(Intelligence department.)

"(४९) आर्त्यै परि-वित्तिम् । .... [४३]
(५०) निर्ऋत्यै परि-विविदानम् । [४४]
(५१) अराध्यै एदिधिषुः पतिम् ।" [४५]

(आर्त्यै) कष्टके समयके लिये (परि-वित्तिम्) सब प्रकारसे ज्ञान प्राप्त करनेवालेको रखो। 'परितः सर्वतः विन्दति वेत्ति वा स परिवित्तिः।' जो अनेक प्रकारसे सच्चा ज्ञान प्राप्त कर सकता है उसको 'परिवित्ति' कहते हैं। सब प्रकारका सच्चा ज्ञान (True information) प्राप्त करके कष्टके समय पर उसका उपयोग करके लोकोंका कष्टोंसे संरक्षण करना इसका काम होगा॥ (निर्-ऋत्यै) अवनतिके लिये (परि-विविदानं) सब प्रकारके विशेष ज्ञानको पास रखनेवालेको रखो। 'परितः सर्वतः विशेषेण विन्दति' जो सबसे पहले सब प्रकारका विशेष ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अवनतिको हटानेके लिये इस प्रकार विशेष ज्ञानीकी योजना करनी चाहिए। (अ-राध्यै) असिद्धिके लिये (एदिधिषुः पतिम्) सबसे पहले धारक और पालकको रखो। 'अग्रे पूर्वमेव दिधिषति धारयितु पायितुं वा इच्छति एदिधिषुः' जो सबसे पूर्व धारण पालनकी इच्छा करता है वह एदिधिषु कहलाता है। इस प्रकारके पालकको जलदी सिद्ध न होनेवाले कर्मोंके लिये रखो, ताकि सबसे पहले हि वह धारण पोषणके कार्य उत्तमतासे करके सब कार्य सिद्ध कर सके।

ये तीनहि मंत्र विशेष विचार करने योग्य हैं। (१) 'परिवित्ति (२) परिविविदान तथा (३) एदिधिषुः पति' ये तीनों शब्द सबसे पहिलेहि भोग प्राप्त करनेकी प्रबल इच्छाका भाव बताते हैं। इसलिये इन शब्दोंका लौकिक संस्कृतमें निम्न प्रकार उपयोग होता है। पहिले दो शब्दोंका लौकिक अर्थ—बडा भाई विवाहित होनेसे पूर्वहि अपना विवाह करनेवाला छोटा भाई। तीसरे शब्दका लौकिक अर्थ—बडे बहिनका विवाह होनेसे पूर्वहि छोटी बहिनका विवाह जिस पतिके साथ होता है उस पतिका नाम 'एदिधिषुः पतिः' है।

'परि-विद्' धातुका अर्थ—To find out ढूंढकर निकालना; ascertain निश्चय करना, जांचना; to twine, twist round लपेटना, डोरीसे बांधना। इन मूल अर्थोंके पश्चात इस धातुका लाक्षणिक अर्थ निम्न प्रकार हुआ है—To marry before an older brother बडे भाईसे पूर्व हि अपनी शादी करना॥

इस 'परि-विद्' धातुसे 'परिविक्ति और परि-विविदान' शब्द हुए हैं। इसलिये यहां मूल अर्थ लेना उचित है।

'एदिधिषुः--अग्रे-दिधिषुः' में 'दिधिषु' का अर्थ—Wishing to gain or obtain प्राप्त करनेकी इच्छा; striving after उन्नतिका परिश्रम करना; seeking खोज करना ये मूल अर्थ पहिले थे परंतु इसका लौकिक में अर्थ—पति, द्वितीयपति, पुनर्विवाहित पति आदि अर्थ हुए हैं। 'एदिधिषु' का अर्थ 'अग्रे-दिधिषु' अर्थात् पहिले 'दिधिषु' होना। यद्यपि इसका लौकिकमें अर्थ बडी बहिनके पूर्व पति प्राप्त करना ऐसा हुआ है तथापि यहां मूल अर्थहि अभीष्ट है ऐसा प्रतीत होता है।

तात्पर्य मूलतः इन तीनोंके अर्थोंका मूल भाव इतनाहि है कि 'अन्योंकी उन्नति होनेसे पूर्वहि अपनी उन्नति करना'। इसी अर्थका शादीमें विप-रिणाम होकर विवाहवाचक अर्थ बन गये हैं। वेदोंका अर्थ देखनेके लिये मूल अर्थोंको लेना, यौगिक अर्थोंका स्वीकार करनाही सर्वथा उचित है। आशा है कि पाठक इसका अधिक विचार करेंगे।

उपसेचन-विभाग।

(Department of progress.)

"(५२) वर्णाय अनुरुधम्।" [४९]

(वर्णाय) वर्णके लिये (अनु-रुधं) अनुकूल काम करनेवालेको रखो। जिस वर्णका जो कार्य होगा वैसा कार्य उससे कराना चाहिए। इसलिये लोकोंसे वर्णोंके अनुसार काम लेनेवाले योग्य मनुष्यको रखो। लोकोंको अपने वर्णके अनुकूल शिक्षण देनेकी व्यवस्था करो। अर्थात् जिसकी जो योग्यता हो उसीके अनुसार उससे कार्य लिया जावे अथवा उनको कार्य सौंपा जावे।

"(५३) मनुष्य-लोकाय प्रकरितारम्। [७६]
(५४) सर्वेभ्यो लोकेभ्य उपसेक्तारम्।" [७७]

(मनुष्य-लोकाय) मनुष्यमात्रके लिये (प्र-करितारं) फैलानेवालेको

रखो। सब मनुष्योंका हित करनेके लिये ऐसे मनुष्यको प्रयुक्त करो कि जिसका काम ज्ञान-शौर्य-धन-हुन्नर आदिका विस्तार करनेका हो। वह उक्त गुणोंका विस्तार करके सबकी उन्नति करे॥ (सर्वेभ्यः लोकेभ्यः) सब लोकोंके लिये (उप-सेक्तारं) सिंचन करनेवालेको रखो। उपसिंचनका तात्पर्य वृक्षोंको पानी डालकर उनको हरेभरे करना, मनुष्योंमें जीवनका उत्साह उत्पन्न करके उनको प्रफुल्लित करना, ज्ञानादि गुणोंका (Infusion) अंदरतक परिणाम पहुंचा कर मनुष्यजातीको उत्साहयुक्त करना।

'उपसेचन' का तात्पर्य (To introduce special principles and qualities among the people) सब मनुष्योंमें विशेष तत्वों और गुणोंका संचार करना। 'प्रकरितृ' का तात्पर्य (one who issues, publishes, promulgates, spreads, expands vigorous ideas among the people) जो मनुष्योंमें उत्साही विचारोंका फैलाव करता है।

"(५५) प्रकामोद्याय उप-सदम्।" [४८]

(प्र-काम-उद्याय) विशेष कार्य उपस्थित होनेपर (उप-सदं) जो पास हो उसीको रखो। अर्थात् विशेष अवस्थामें विशेष प्रकारका कार्य अचानक उपस्थित होनेपर, जो उस समय पास रहनेवाले मनुष्योंमें योग्य होगा, उसीको प्रयुक्त करो। योग्यको ढूंढनेमें देरी होगी और देरीसेहि कार्य बिघड जायगा, ऐसी अवस्थामें इस आज्ञाके अनुसार कार्य करना चाहिए।

संधि-विभाग।

"(५६) संधये जारम्।" [४१]

(संधये) सुलह करनेके लिये (जारं) वृद्धको रखो। (For alliance, friendship, peace or treaty appoint aged persons)

'जॄ-वयोहानौ। जीर्यति इति जारः।' जिसकी बहुत आयु व्यतीत हो चुकी हो उसको 'जार' कहते हैं। 'जार' का अर्थ—Becoming old वृद्ध होना। इसीका 'व्यभिचारी' ऐसा अर्थ लौकिकमें प्रचलित है। वह यहां अभीष्ट नहीं। व्यभिचारसे वीर्य नाश होनेके कारण आयुका भी नाश होता है इसलिये व्यभिचारीका नाम 'जार' हुआ है। परंतु पहिला मूल अर्थ 'वृद्ध' ऐसाहि है।

सुलहके समय वृद्धोंको इसलिये रखना चाहिए कि वे अपने दीर्घ आयुष्यके अनुभवका लाभ दोनों पक्षोंको दे सकेंगे। यदि सुलहकी मंडलीमें पक्षाभिमानी तरुणहि रहेंगे तो सुलह करते करते फिर युद्धहि भडक उठेगा। इसलिये निःपक्षपाती वृद्धोंकी मंडलीद्वारा सुलह करनी उचित है।

राष्ट्र-भृत्य-विभाग।

(Department of National volunteers)

"(५७) अक्ष-राजाय कितवम्।" [१३३]

(अक्ष[१]-राजाय) राष्ट्रभृत्योंके प्रधानपदके लिये (कित-वं) विशेष ज्ञानीको रखो। 'कित-व' शब्दका अर्थ पहिले आ चुका है, 'कित्-संज्ञाने' इस धातुसे यह बनता है। 'अक्ष' शब्दके अर्थके लिये निम्न मंत्र देखने योग्य हैः—

सं वसव इति वो नामधेयमुग्रंपश्या राष्ट्रभृतो ह्यक्षाः॥
तेभ्यो व इन्दवो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥

अथर्व. ७।१०९।६

"(वः नामधेयं) आपका नाम (सं-वसवः इति) उत्तम वसु ऐसा है। (जो मनुष्योंके निवासका उत्तम साधन होता है वह हि 'सं-वसु'

---

१ अक्ष 'शब्दका जूआ अर्थ यहा इष्ट नही क्योकि 'अक्षैर्मा दीव्यः।' ऐसा देवने जुवेबाजिका निषेधहि किया है।

कहलाता है ।) आपका (उग्रं पश्याः) स्वरूप क्षात्रतेजसे युक्त है तथा आप (राष्ट्र-भृतः) राष्ट्रका भरण पोषण करनेवाले अतएव राष्ट्रके (अक्षा.) आंख है । (तेभ्यः वः) उन आप राष्ट्र भृत्योंके लिये (हविषा) अर्पण-द्वारा (इन्दवः) शांतिसुख (विधेम) हम सब करेंगे । देगें । जिससे (वयं) हम सब (रयीणां पतयः) धनोके स्वामी (स्याम) होवेगे ।"

इस मंत्रसे राष्ट्र-भृत्य (Public-servants, national volunteers) हि अक्ष हैं यह बात सिद्ध होती है, क्यौ कि इनहीके कारण लोकोंका धन सुरक्षित रहता है। इन राष्ट्रभृत्योंके प्रधानपदके लिये विशेष ज्ञानीको हि रखना चाहिए । क्योंकि इसके ज्ञानपर सब राष्ट्रभृत्योंका व्यवहार होना है । इनमें 'कृत, त्रेत, द्वापार और कलि' ऐसे चार भेद होते है । उनका लक्षणः—

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः ॥
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन् ॥

ऐत० ब्रा. ७।१५

(१) सोनेवाला आलसी 'कली' होता है । (२) आलस छोडकर प्रयत्न करनेके लिये जो उद्यत होता है उसको 'द्वापर' कहते हैं। (३) जो पुरुषार्थ करनेके लिये लगता है वह 'त्रेता' कहलाता है तथा (४) जो पुरुषार्थमें सदा मग्न रहता है उसको 'कृत' कहते हैं । ये चार प्रकार-रके राष्ट्रभृत्य होते हैं ।

"(५८) कृताय आदिनव-दर्शम् । ....[१३४]
(५९) त्रेतायै कल्पिनम् । ....[१३५]
(६०) द्वापाराय अधिकल्पिनम् ।" [१३६]

(कृताय) कृत अर्थात् कर्तव्य पुरुषार्थके लिये (आदिनव-दर्शं) अपने दोष देखनेवालेको रखो । अपने दोषोंका पता लग जानेसे वह पुरुषार्थी अपने उन दोषोंको दूर करके, अपनी उन्नतिका साधन करके,

श्रेष्ठ पुरुषार्थ कर सकेगा॥ (त्रेतायै) जो पुरुषार्थ करनेके विचारमें होता है उसके लिये (कल्पिनं) विशेष कल्पना (Mental creation) करनेवालेको रखो। अर्थात् उन कल्पनाओंका ग्रहण करके वह पुरुषार्थ करनेमें अच्छी प्रकार योग्य होगा। जिसके पास कोई कल्पना नहीं वह अच्छा पुरुषार्थ नहीं कर सकेगा। इसलिये पुरुषार्थ करनेका विचार मनमें आते हि विशेष उच्च कल्पनाओंद्वारा उनको उत्साहित करना चाहिए॥ (द्वापाराय) आलस छोडनेवालेके लिये (अधि-कल्पिनं) विशेष ख्याल करनेवालेको रखो। ताकि उनके विचारोंसे स्फुरित होकर वह आलस छोडनेवाला मनुष्य पुरुषार्थको प्रारंभ करके अपना कार्य अच्छी प्रकार निभा सकेगा।

तात्पर्य मानसिक सुविचारोंका पुरुषार्थके साथ विशेष संबंध है। इन राष्ट्रभृत्योंमें श्रेष्ठ पुरुषार्थका जीवन स्थिर रहनेके लिये सुविचारी लोकोंके साथ उनका मेलमिलाफ होना चाहिए तथा उनका अध्यक्ष बडा विचारी विद्वान रखना चाहिए।

"(६१) अग्नये पीवानम्।.... ...[१६३]
(६२) पृथिव्यै पीठ-सर्पिणम्। [१६४]
(६३) वायवे चांडालम्।....... [१६५]
(६४) अंतरिक्षाय वंशवर्तिनम्।" [१६६]

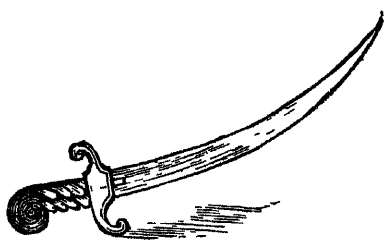
अग्निके साथ काम करनेके लिये (पीवानं Stout) बलवान मनुष्यको रखो। पृथिवीके साथ साथ चलनेके लिये (पीठ-सर्पिणं) पीठसे चलनेवालेको रखो। वायुके जोरमें कर्म करनेके लिये (चंड-अलं) प्रचंड शक्तिवालेको रखो। अंतरिक्षमें कार्य करनेके लिये (वंश-वर्तिनं) बांसके साथ चलनेवालेको रखो।

"(६५) अह्ने शुक्लं पिंगाक्षम्। [१७१]

(६६) रात्र्यै कृष्णं पिंगाक्षम्।" [१७२]

दिनके कार्यके लिये गोरे रंगके आदमीको रखो जिसके भूरे आंख हों। तथा रात्रीके कार्यके लिये काले रंगके मनुष्यको रखो जिसके भूरे आंख हों॥

दिनके समय गोरा मनुष्य अधिकारमें रहे तथा रात्रीके समय काला रखा जाय। इस आज्ञाका हेतु विचार करने योग्य है।



(३) वैश्य-वर्ण-विभाग ।

(Commercial department.)

“(१) मरुद्भ्यो वैश्यम् ।” [३]

(मरुद्भ्यः) मनुष्योंके लिये (वैश्यं) वैश्यको नियुक्त करो ।

'मरुत्' शब्द मरणधर्मा मनुष्यका बोधक है । मरुत् शब्द यहां बहुवचनमें होनेसे सब मनुष्य जातिका बोधक होता है । सब मनुष्योंके लिये सबसे पहिले दुकानदारोंकी आवश्यकता होती है । जहां मनुष्य एकत्रित होते हैं, और जहां बहुत दिनतक स्थिरतासे रहने होते है, वहां दुकानोंका प्रबंध अवश्य करना पडता है। जहां ग्राम हो वहां दुकानका प्रबंध होना चाहिए। (मरुत्, मर्त, मर्त्य, मर्य, Mortal.)

वैश्योंका धर्म यही है, कि चारों देशोंमें जो पदार्थ मिल सकते हों, उनको लाकर बेचें । वैश्योके कारणहि नाना देशोंके नाना प्रकारके पदार्थ सब मनुष्योंको घर बैठे बैठे मिल सकते हैं । जिस ग्राममें दुकान रखनेसे लाभ नहीं होता, वहां वैश्य लोक अपनी दुकान नहीं खोल सकते । इसलिये राजकीय प्रबंधसे वहां दुकान खोली जाती है, अथवा किसी वैश्यको वहां दुकान खोलनेके लिये उत्साह देकर यथोचित सहायता दे कर प्रबंध किया जाता है । जिससे वैश्यका भी नुकसान न हो और वहांकी जनताको भी लाभ हो सके। तात्पर्य सब जनताके लाभके लिये वैश्योंको नियुक्त करना चाहिए ।

“(२) आक्रयायै अ-योगुम् ।” [८]

(आ-क्रयायै) क्रय विक्रयके लिये (अ-योगुं) जो विशेष प्रयत्न करनेवाला हो। (For trade appoint one who makes vigorous efforts.)

व्यापारके लिये विशेष जोरके साथ प्रबल प्रयत्न करनेवालेको रखो। 'अयोगु, अयोग' का अर्थ—Making vigorous efforts, जो प्रबल प्रयत्न करता है; strong effort प्रबल यत्न, unconnected with any other दूसरेके साथ गुप्त संबध न रखनेवाला; exertions प्रयत्न, पुरुषार्थ, मेहनत ॥

"(३) तुलायै वणिजम् ।" [१२५]

(तुलायै) तोलके लिये (वणिज) बनियाको रखो । व्यापारीके लिये अपने तोल, माप आदि सब ठीक रखने चाहिए। ठीक तोलके लिये व्यापारीके पास जाना चाहिए। व्यापारीके पास तोलका ठीक साधन प्राप्त हो सकता है।

श्रेष्ठि-विभाग ।

(Banking department.)

"(४) श्रेयसे वित्त-धम् ।" [६९]

(श्रेयसे) कल्याणके लिये (वित्त धं) धनका धारण करनेवालेको प्राप्त कीजिए। (For promoting happiness approach one who holds wealth, a banker.)

'श्रेयः' शब्दका अर्थ—Better-ment उच्च स्थिति; superiority उत्तमता; most excellent and desirable बहुत अच्छी तथा इच्छा करने योग्य (अवस्था;) virtue सद्गुण, righteous सच्चा, सीधा; welfare आनंद, सुस्थिति; auspicious result पवित्र परिणाम, final beatitude अंतिम स्वातंत्र्य ॥

'वित्त-ध' का अर्थ—धनका धारण करनेवाला, जो बहुत धन अपने पास रखता और बढाता है। Banker सेठ, साहूकार, महाजन, पेढी-वाला, बैंक ॥

कृषि-विभाग।

(Agricultural department.)

"(५) इरायै की-नाशम्।" [६६]

'की-नाश' का अर्थ—'कुत्सितं नाशयति इति कीनाशः।' जो बुरी अवस्थाका नाश करता है उसको की-नाश कहते हैं। 'कु' का अर्थ—Badness बुराई; deterioration अवनति, बिघाड, खराबी; depreciation गिरावट, घटाव; sin पाप, reproach अपमान; want, deficiency न्यूनता, हानी, कमताई॥ इन अवनतिकारक अवस्थाओंका नाश करनेवाला 'कीनाश' अर्थात् किसान होता है। 'की-नाश' का शब्दशः यौगिक अर्थ (destroyer of want) न्यूनताका नाश करनेवाला अर्थात् समृद्धि करनेवाला है॥ इसका लौकिक अर्थ किसान, कृषीवल, खेती करनेवाला है। किसान हि राष्ट्रके अंदर धान्यकी तथा अन्नकी समृद्धि करके लोकोंका हानीसे रक्षण करता है।

समासमें 'कु' का 'की' होता है और 'कु-नाश' का 'की-नाश' बनता है। किसानोंके उद्योग पर हि राष्ट्रके अन्नका निर्भर है, और यदि अन्नकी उत्पत्ति न हुई तो 'अकाल' होता है। अकालसे सब लोकोंको बचानेवाला किसान है। 'नाश' शब्दका अक्षर-व्यत्यय होकर 'शान, सान' बना और 'की-नाश' का 'कि-सान' बना। 'कृषाण' शब्दसे भी 'किसान' शीघ्र बन सकता है, कीनाश शब्दके इस अर्थ को देखनेसे 'किसान' का राष्ट्रीय महत्व ध्यानमें आ सकता है।

(इरायै) अन्नके लिये (की-नाशं) किसानको प्राप्त करो। (For food approach a cultivator of the soil.) कीनाश अर्थात् किसानका महत्व वेद निम्नप्रकार वर्णन करता है:—

पद्भिः सेदिमवक्रामन्निरां जङ्घाभिरुत्खिदन्॥
श्रमेणानड्वान् कीलालं कीनाशश्चाभिगच्छतः॥

अथर्व. ४।११।१०

(पद्भिः) अपने पावोंद्वारा (सेदिं Exhaustion, decay) विनाशको (अव-क्रामन्-over-coming) पराजित करता हुआ और (जंघाभिः) जांघोंद्वारा (इरां) अन्नको (उत् खिदन्) ऊपर करता हुआ अर्थात् उत्पन्न करता हुआ (अनड्वान्) बैल, तथा (श्रमेण कीनाशः) कष्टके साथ खेती करनेवाला किसान, ये दोनों (कीलालं) उत्तम अन्नपानको (अभि-गच्छतः) सब प्रकारसे प्राप्त करते हैं।"

खेतीके लिये बैलकी आवश्यकता है, क्योंकि वह बैल खेती करनेके लिए जब खेतोंमें चलता है; तब मानो, वह अपने पाओंसे अकालरूपी शत्रु-पर धांवा करता है, और जांघोंसे भूमीमेंसे अन्नको ऊपर खेचता है। इसके साथ किसान खेतोंमें परिश्रम करता है, और ये दोनों उत्तम अन्नपानको अपनी मेहनतसे प्राप्त करते हैं। तथा—

देवा इमं मधुना संयुतं यवं सरस्वत्यामधि मणावच-र्कृषुः॥ इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः॥ अथर्व. ६।३०।१॥

"(सरस्-वत्यां) पानीके प्रवाहसे युक्त (मणौ अधि) उत्तम भूमीमें (इमं) इस (मधुना संयुतं यवं) मीठे जौ अथवा चावलोंकी (देवाः) देवोंने (अचर्कृषुः) खेती की। उस समय (शत क्रतुः) सैकडों कर्म करनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र, देवोंका राजा (सीर पतिः आसीत्) हलका रक्षक था और (सु-दानवः मरुतः) उत्तम दाता मरुद्गणदेव (कीनाशाः आसन्) किसान थे।"

'देव' का अर्थ—विजयकी इच्छा करनेवाले लोक, ज्ञानी, समझदार लोक। 'इन्द्र' का अर्थ—राजा, स्वामी, मालिक। 'मरुत् (मर्-उत्)' का अर्थ—मरणधर्मवाले मनुष्य है। 'मणि' का अर्थ—Any thing best of its kind अपने जातिमें जो उत्तम होता है, उसको मणि कहते हैं, यहां उत्तम भूमीका तात्पर्य है।

पानीके समीपकी उत्तम भूमीमें जब विजयेच्छु लोक मीठे यवोंकी खेती करने लगते हैं, तब राजा हलका पालन करे अर्थात् हलआदि खेतीके साधनोंका संरक्षण राजासे होवे, और दानशूर सब मनुष्य किसान

बनकर खेतीका पवित्र कार्य करें। जहां शतक्रतु इन्द्र भी हल चलाता है, और सब मरुद्गण तथा सब देव खेतीका कार्य करते हैं, वहां साधारण मनुष्य खेतीके काम को नीच कर्म क्यों समझें? जिस कर्मको सब देवोंनें पवित्र बनाया और जो काम करके सब देवोंनें अपना आदर्श बताया, उस उत्तम कर्मको नीचा समझनेवाला आदमी अच्छा नहीं हो सकता। अस्तु इस प्रकार किसानके कर्मका महत्व है जो अकालसे सबको बचाता है वह किसानहि सबका रक्षक है।

गो-रक्षा-विभाग।

(Department for protecting domestic animals.)

"(६) पुष्ट्यै गो-पालम्। [६३]
(७) वीर्याय अवि-पालम्। [६४]
(८) तेजसे अज-पालम्। [६५]

(पुष्ट्यै) पुष्टीके लिये (गो-पालं) गौका पालन करनेवालेको रखो। गायके दूध, दही, मक्खन, घी आदिसे शरीरकी पुष्टि होती है। जो पुष्टि चाहते हैं वे गायका दूध पीयें॥ (वीर्याय) धातुकी वृद्धिके लिये (अवि-पालं) भेडोंके पालकको रखो। भेडी (Sheep) के दूधसे वीर्यकी वृद्धि होती है। जो अपने शरीरमें वीर्यकी वृद्धि करना चाहते हैं वे भेडीका दूध पीयें॥ (तेजसे) तेजस्विताके लिये (अज-पालं) बकरियोंके पालकको रखो। बकरीके (she-goat) शरीरका तेज बढता है जो तेजकी वृद्धि चाहते हैं वे बकरीका दूध पीयें।

घोडे पालनेवाले इस अनुभवकी साक्षी देते हैं। वे कहते हैं कि, भैंसके दूधसे घोडा सुस्त होता है, गायके दूधसे पुष्ट होता है परन्तु डरपोक होता है, भेडीके दूधसे वीर्यवान होता है, और बकरीके दूधसे तेज, फुर्तिला, होता है। पाठकोंको चाहिए कि वे इस बातका विशेष अनुभव लेकर अपना अपना अनुभव प्रसिद्ध करें। अनुभव थोडेसे दिनोंका नहीं चाहिए, परंतु कमसे कम २०।२५ सालोंका चाहिए, तभी किसी परिणाम तक पहुंचना संभव है। यहां गौ, बकरी, भेड आदि पशुओंके दूधसे तात्पर्य है न कि मांसके भक्षणका भाव है। देखीए:—

पुष्टिं पशूनां परिजग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम् ॥ पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नियच्छात् ॥ अथर्व. १९।३१।५ ॥

'द्विपाद और चतुष्पाद पशुओंसे, तथा जो धान्य है, उससे (पुष्टिं) पुष्टिका (अहं परि जग्रभ) मैं स्वीकार करता हूं। (पशूनां पय·) पशुओंका दूध तथा (ओषधीनां रसं) औषधियोंका रस (मे) मुझे (सविता बृहस्पतिः) सबके उत्पादक ज्ञानपति ईश्वरने (नि यच्छात्) दिया है।'

इस मंत्रमें 'पशूनां पयः, ओषधीनां रसः।' इन शब्दोंद्वारा स्पष्ट कहा है, कि पशुओंसे दूध लेना है, न कि उनका मांस। जहां जहां पशु शब्द का उल्लेख आवेगा, वहां वहां उस पशुका दूध लेना है। यह बात न समझनेके कारण पशु-यज्ञका तात्पर्य पशु-मांस-यज्ञ किया गया, और भ्रांत लोकोंने पशुमांसका हवन किया, और पशुमांसका भक्षण करना भी प्रारंभ किया। परन्तु इस मंत्रने बिलकुल स्पष्टतासे कहा है, कि पशुका तात्पर्य उसके दूधसे है। अर्थात् यज्ञमें दूध, घी आदिकाहि हवन होना चाहिए, तथा खानेमें दूध, दही, मक्खन, घी, छाछ आदि पदार्थहि आने चाहिए।

उक्त ३ मंत्रोंका तात्पर्य इतनाही है, कि पुष्टीके लिये गायका दूध, वीर्यके लिये भेडीका दूध और तेजीके लिये बकरीका दूध सेवन करना चाहिए। न कि केवल गडरियेके पास पहुंचनेसे पुष्टि होगी। गडरिया अथवा दूध बेचनेवाला एक साधन है कि, जिसके पास उक्त पशु रहनेसे उक्त पशुओंका दूध प्राप्त हो सकता है। दूध, दही, घी, आदि दूधके सब पदार्थोंमें उक्त गुण होंगे। इसका विचार स्वाध्यायशील वैद्योंको करना उचित है।



(४) शूद्र-वर्ण-विभाग ।

(Arts-men, crafts-men & labourers.)

"(१) तपसे शूद्रम् ।" [४]

(तपसे) कष्टके कर्मोंके लिये (शूद्रं) शूद्रको प्राप्त करो । (For labour appoint a labourer.)

'तपः' का अर्थ—कष्ट सहन करना, मेहनतका काम करना, तपना। इस शब्दके दूसरे अर्थ पहिले दिये हैं ।

'शूद्र' का अर्थ—'शु क्षिप्रं उन्दति।' शु अर्थात् (Quickly, swiftly) शीघ्र जो (उन्दति) पसीनेसे गीला होता है, वह शूद्र है। अर्थात् जो ऐसे काम करता है, कि जिनमें शरीर पसीनेसे गीला बन जाता है। 'शु' शब्द निघण्टुमें २।१५ क्षिपनामोंमें लिखा है ।

'शूद्र' शब्दके सब अन्य अर्थ लाक्षणिक हैं । यही उक्त अर्थ मूल और शब्दका वास्तविक अर्थ है। 'शुचा द्रवति' दुःखसे गमन करता है यह अर्थ इसका वास्तविक नहीं। वेदमें शूद्रका महत्व बडाभारी लिखा है। इसलिये शोक-दुःख-के साथ उसका संबंध बताना ठीक नहीं। 'शु+उत्+द्रा' शीघ्रताके साथ उन्नतिकेलिये प्रयत्न करता है यह भी शूद्र शब्दका अर्थ विचार करने योग्य है। राष्ट्रके पांव शूद्र है, अर्थात् राष्ट्र शूद्रों पर खडा रहता है, राष्ट्रका आधार शूद्र है, राष्ट्रकी बुनियाद शूद्र है। इसीलिये शूद्रोंके अंदर तेजकी वृद्धि करनेके लिये मंत्रमें प्रार्थना की है ।

रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥

यजु० अ० १८।४८

"वैश्य तथा शूद्रोंमें (रुचं) तेज स्थापन करो" शूद्रोंमें भी तेजस्विता रहनी चाहिए। राष्ट्रमें जैसे तेजस्वी ब्राह्मण और क्षत्रिय होने चाहिए, उसी प्रकार वैश्यशूद्रोंमें भी तेज होना चाहिए । यह वैदिक शिक्षा है। इसलिये शूद्रको हीन मानना अथवा उसकी दीन अवस्था बनाना किसीको भी उचित नहीं।

कौशल्यविभाग ।

"(२) तमसे तस्करम् । " [५]

(तमसे) अज्ञान दूर करनेके लिये (तस्+करं=तत्+करं) उस उस कर्ममें प्रवीणको प्राप्त करो ।

'तस्कर' का अर्थ—'तत् करोति इति तत्करः । तत्कर एव तस्करः । ' उस उस कर्मका कर्ता अर्थात् एकएक कर्म करनेमें अत्यंत प्रवीण जो होता है, उसको 'तत्कर' कहते हैं, इसी शब्दका रूप 'तस्कर' है । इस वर्गमें अनेक कर्म कर्ताओंके नाम आगये है; जिनका वर्णन अब किया जाता है:—

"(३) मायायै कर्मारम् ।" [२२]

(मायायै) कुशलताकेलिये (कर्मारं) कारीगरको प्राप्त करो । (For art approach an artist)

'कर्मार' शब्दका अर्थ—An artisan कारीगर, mechanic शिल्पकार, यंत्रशास्त्रज्ञ; कलकी बनावट करनेवाला; artificer दस्तकारी करनेवाला, हस्तकौशल्यका काम करनेवाला, black-smith लुहार ।

'माया' शब्दका अर्थ—A device हिकमत, बनावट; an artifice हस्तकौशल्य, a political diplomatic feat राजनैतिक युक्तिप्रयोग; extraordinary power or wisdom विलक्षण शक्ति अथवा बुद्धि; art कला, हुनर; wisdom बुद्धि; super-natural power अलौकिक शक्ति ।

इन अर्थोंका विचार करके उक्त मंत्रसे अन्य विशेष भाव विचारी पाठक जान सकते हैं ।

"(४) रूपाय मणिकारम् ।" [२३]

(रूपाय) सुन्दरताके लिये (मणि-कारं) जौहरी (Jeweller) को प्राप्त करो जौहरीके पास जवाहिरात अर्थात् मणि, मोती, हीरे,

रत्न, आदि पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं, जिससे मनुष्य अपने स्वरूपकी शोभा बढा सकते है।

"(५) निष्कृत्यै पेशस्कारीम् ।" [४६]

(निष्कृत्यै) सुधारनेके लिये (पेशस्-कारीं) सजावट करनेवालेको प्राप्त करो। (For restoration or repair—work approach one who gives the finishing touch.)

'पेशस्' का अर्थ–Form आकार, सुरूपता; Lustre चमक व दमक brightness सतेजता; decoration सजावट, शृङ्गार; ornament गहना, जेवर, सौंदर्य बढानेका साधन ॥ इनके कर्ताका नाम 'पेशस्कारी' है अर्थात् सजावट करनेवाला ॥

"(६) देव-लोकाय पेशितारम् ।" [७५]

(देव-लोकाय) दिव्यस्थानके लिये (पेशितारं) सौंदर्य बढानेवालेको प्राप्त करो।

'देव-लोक' का अर्थ–देवोंका लोक, देवोंका स्थान, उत्तम पुरुषोंका स्थान, श्रेष्ठोंका स्थान, उत्तम घर, उत्तम महल बनानेके लिये सुरूपता बढानेवालेको रखो।

'पेशिता' का अर्थ–आकारका विचार करनेवाला, सुन्दर आकार बनानेवाला, किसी पदार्थकी सुंदरता बढानेवाला।

किसी पदार्थका सौदर्य बढानेके लिए ऐसे कारीगरको रखो कि, जो उसको अधिक सुंदर बना सके।

"(७) हसाय कारीम् । [७६]

(८) हसाय कारीम् ।" [१५४]

'हस्' धातुका अर्थ—To surpass, excel बढ जाना, श्रेष्ठ बनना; to resemble सदृश करना, एकरूप होना; to bloom

खिलना, फूलना, विकसना; to brighten up चमकदार होना; to smile आनंदसे हंसना ।

'हस' शब्दका अर्थ—बढना, श्रेष्ठत्व, सादृश्य, एकरूपता, विकास, चमक, आनंदका हास्य ।

(हसाय) चमक दमक केलिये (कारीं) कारीगरको प्राप्त करो । (For excellence or resemblance appoint an artist.)

किसी पदार्थकी शोभा बढाना, उसको बहुमूल्य बनाना, उसकी एक जैसी प्रतिकृति बनाना, शोभाका विकास करना, चमक बढाना आदि कर्मोंके लिये कारीगरको नियुक्त करना चाहिए । किसीके सदृश तसबीर, चित्र अथवा मूर्ति बनानेका भाव यहां प्रतीत होता है। इस विषयमें विचारी पाठकोंको सोचना चाहिए। यह मंत्र दोवार आया है, जिससे स्पष्ट होता है, कि प्रतिकृति बनानेवाले कारीगरोंकी राष्ट्रमें अधिक आवश्यकता है। मंत्रका द्विवार, प्रारंभमें तथा अंतमें, उच्चारण होनेसे 'कारी' अर्थात् कारीगरोंकी राष्ट्रीय उन्नतिके लिये अत्यंत आवश्यकता सिद्ध हुई है। 'पुनरुक्तिका महत्व' यहां देखा जा सकता है ।

"(९) वर्णाय हिरण्यकारम् ।" [१२४]

(वर्णाय) रंगके लिये (हिरण्य-कारं) सुवर्णकारको प्राप्त करो। सुवर्णका अर्थहि सु-वर्ण अर्थात् उत्तम वर्ण है । सुवर्ण अर्थात् सोनेका शरीरके कांतिके साथ कुछ न कुछ संबंध है। सोनेके आभूषण धारण करनेके साथ आयुष्य वृद्धिका संबंध वेदने बताया है:—

> यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं
> स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः ।
> स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥

यजु. ३४।५१ ॥ अथर्व. १।३५।२ ॥

"जो दाक्षायण सुवर्ण धारण करता है वह विद्वानोंमें दीर्घायु होता है तथा साधारण मनुष्योंमें भी दीर्घायु होता है ।"

'दाक्षायण हिरण्य' का भाव अत्यंत शुद्ध सोना ऐसा प्रतीत होता है। वैद्योंको इस विषयमें सोचना चाहिए। शरीरका सौंदर्य, शरीरका तेज, शरीरकी उत्तम कांति, सुवर्णके धारण करनेसे बढती है। शुद्ध अन्न, शुद्ध उदक, शुद्ध वायु, उत्तम व्यायाम आदिके साथ सुवर्णका धारण करना लाभ-दायक होगा। केवल सुवर्णके धारण करनेसेहि आयुष्य नहीं बढ सकेगा। यह बात यहां स्मरणमें रखना चाहिए।

"(१०) प्रकामाय रजयित्रीम्।" [८०]

(प्रकामाय) शोभाके लिये (रजयित्रीं) रंग देनेवालेको प्राप्त करो। कपडोंको रंगवाना, तथा अन्य पदार्थोंको रंग देनेका काम करनेवाले जो होते हैं, उनको प्राप्त करके, प्रकाम (Excellence) अर्थात् उत्तम शोभाको प्राप्त करना। जिससे मनका अत्यंत समाधान होता है, उसको 'प्र-काम' कहते हैं।

"(११) धैर्याय तक्षाणम्।" [२०]

(धैर्याय) धैर्यके लिये (तक्षाणं) शिल्पीको प्राप्त करो। गृह आदि बनानेवाले शिल्पीयों (Architect) को 'तक्षाण' कहते हैं। घर बनानेके समय अच्छे शिल्पीको नियुक्त करनेसे मनमें एक प्रकारका धैर्य उत्पन्न होता है, और विश्वास होता है कि, घरका काम नहीं बिघडेगा। परंतु अच्छे शिल्पीको न लगाकर साधारण राजोंको लगानेसे मनमें बडा डर रहता है, और सदा मनमें बात चुभती रहती है, और मनमें शंका होती है, कि शायद वह काम बिघडेगा, क्योंकि उस कामके लिये अच्छे कारीगरोंको नहीं रखा है। इसलिये सदा अच्छे कारीगरोंकोहि काम पर लगाना धैर्य देनेवाला होता है। सब कामोंके लिये यही एक नियम ध्यानमें धरना चाहिए, कि अच्छेसे अच्छे कारीगरोंकेहि सुपुर्द अपना कार्य करना चाहिए।

"(१२) शुभे वपम्।" [२४]

(शुभे) सुंदरताके लिये (वपं) हज्जामको प्राप्त करो। (For beauty approach a barber.)

इस मंत्रका दुसरा भी अर्थ है । (शुभे) उत्तमताके लिये (वपं) बीज बोनेवाले किसानको नियुक्त करो । (For welfare or prosperity appoint one who sows seeds.)

दूसरे अर्थके साथ यह मंत्र वैश्यवर्गीय कृषिविभागमें जायगा और पहिले अर्थके साथ कारीगर-विभागमें यहांहि रहेगा । इसके दोनों अर्थ ठीक प्रतीत होते हैं, और वेदमें अन्यत्र ये शब्द दोनों अर्थोमें प्रयुक्त हुए है । इस विषयमें पाठकोंको अधिक विचार करना चाहिए ।

"(१३) भायै दार्वाहारम् । [७१]

(१४) प्र-भायै अग्न्येधम् ।" [७२]

(भायै) उजालेके लिये (दारु+आ+हारं) लकडियां लानेवालेको प्राप्त करो । (प्र-भायै) विशेष प्रकाशके लिये (अग्नि+एधं) अग्नि प्रदीप्त करनेवालेको प्राप्त करो ।

"(१५) मन्यवेऽयस्तापम् ।" [९१]

(मन्यवे) तेजकी धारणाके लिये (अयः-तापं) लोहा तपानेवाले लुहारको प्राप्त करो । (For temper approach a blacksmith.)

'मन्यु' शब्दका अर्थ—Spirit, mind, mood, mettle, स्वभाव, हिम्मत, हौसला, जोश, जान, मन, जिन्दा दिली, सत्व, सूरत, तबियत, मिजाज, वीरता, शौर्य, stuff सत्व, मूल पदार्थ; temper, courage धैर्य, स्वभाव; fire अग्नि, जोश, क्रोध, तेजी, तेजस्वी स्वभाव; ardour, warm affection, zeal, fervency उत्साहयुक्त प्रेम, सरगर्मी, शौक, उत्ताप, जोश, हरारत, sacrifice यज्ञ, पूजा-संगति-दान, स्वार्थ-त्याग ।

'अयः' का अर्थ—Movement हलचल; iron लोहा; gold सोना, steel फूलाद, स्पात; metal धात; an iron instrument लोहेका शस्त्र; fire अग्नि, आग; an axe परशु, कुल्हाड, हथौडी ।

यद्यपि यह मंत्र समझनेके लिये बहुत कठिन है, तथापि मैं इसका आशय निम्नप्रकार समझता हूं । 'मन्यु' शब्दके अर्थोंमें Temper अर्थ मुख्य है । यह शब्द जैसा मनुष्य-स्वभावका वाचक है। वैसा लोहेके शस्त्रोंको ठीक तेज करनेके लुहारके व्यवसायका भी वाचक है। शस्त्रोंको तेज करनेके पहिले उनको (temper) तेजकी धारणा करनेके लिये योग्य बनाया जाता है । लुहार लोहेको तपाकर, लाल होनेके पश्चात् उसको एकदम पानीमें डालता है, जिससे वह लोहा ठीक बनता है। शस्त्रोंको तेज करनेके लिये लुहारके पास जाना चाहिए ।

मनको तेज (Temper) करने के लिये गुरुके पास जाना चाहिए । वह गुरु शिष्यका मन शास्त्रोंके अग्निमें तपाकर, अपनी सुशीलताके शांत जीवनमें डालकर ठीक बनता है । यह आलंकारिक अर्थ है । मेरे विचारमें पहिला अर्थ यहां प्रकरणानुकूल है ।

"(१६) ऋभुभ्यः अजिनसंधम् । [१०९]
(१७) साध्येभ्यः चर्मम्नम् ।" [११०]

(ऋभुभ्यः) रथ अथवा सवारी गाडी बनानेवालोंके साथ (अजिन-संधं) चमडेका काम करनेवालेको नियुक्त करो । (Along with coachbuilders appoint leather-workers) (साध्येभ्यः) पूर्णता करनेवालोंके साथ (चर्म-म्नं) चमडेको ठीक करनेवालेको नियुक्त करो । (Appoint leather-tanners with finishers.)

'ऋभु' का अर्थ—Skilful कला हुनर जाननेवाला, कुशल, कारीगर; clever चतुर, स्याना; an artist कारीगर; a smith धातुका काम करनेवाला कारीगर; coach-builder सवारी गाडी बनानेवाला कारीगर, रथकार; inventive नई बात निकालनेवाला, नवीन शोध करनेवाला, नवीन यंत्रकलाका आविष्कार करनेवाला, inventor शोधक, कल्पक ।

'अजिन' का अर्थ—Skin चर्म, चमडा, a leather-bag चमडेकी थैली, बोरा, थैला; bellows फुकनी, धवकनी; fur ऊन ।

'अजिन-संध' का अर्थ—चमडा जोडनेवाला, चमडेके थैले बनानेवाला (Manufactuier of leather bags), उनका व्यवहार करनेवाला इ०।

सवारीकी गाडियां बनानेवाले कारीगरोंके साथ चमडेका काम करनेवाले कारीगरोंका मेलमिलाफ होना चाहिए। गाडियोंमें चमडेके गद्दे और तकिये होने है। दोनों कारीगरोंके मेलसे इनकी बनावट अच्छी हो सकती है। लकडीका काम करनेवाले कारीगरोंका चमडेके कामकरनेवाले कारीगरोंके साथ व्यापार व्यवहारका मेल मिलाफ (Tiade—union) होना उचित है, क्योंकि दोनोंका व्यवहार अनेक कार्योंमें संमिलित होनेवाला है। खुर्सी और कोचों पर चमडेकी गद्दियां (cushions) रखीं जातीं है, इसलिये एक खुर्सी बनानेमें दोनों कारीगरोंका संबंध आता है, अतः इनको आपसमें मेलमिलाप करना चाहिए।

'साध्य' का अर्थ—One who finishes जो अंतिम पूर्णता करता है, ठीक ठाक करनेवाला, accomplisher परिपूर्णता करनेवाला। इस शब्दका भाव समझनेके लिये, पाठकोंको दो कारीगरोंकी कल्पना करना चाहिए। (१) एक लकडीकी खुर्सी बनानेवाला, और (२) दूसरा बने हुए खुर्सीपर पालिश वारनीश आदि करके उत्तम पूर्ण बनानेवाला; इस दूसरे कारीगरका नाम 'साध्य' है। हर एक कारीगरीमें इसका होना संभव है। अपूर्ण पदार्थको पूर्ण बनानेवाला कारीगर 'साध्य' होता है।

'चर्म—म्न' का अर्थ—Leather-tanner चमडा कमानेवाला। पाठकोंको उचित है कि वे इन अर्थोंके साथ उक्त मंत्रोंका विचार करें और उनका आशय सोचे।

परिवेषण-विभाग।

(परोसनेका काम)

"(१८) वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम्।" [७४]

"(१९) वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम्।" [९०]

(वर्षिष्ठाय नाकाय) श्रेष्ठ सुखके लिये (परिवेष्टारं) उत्तम परोसनेवालेको नियुक्त करो ।

क-सुख, आनंद, स्वास्थ्य । अ+क=दुःख, अस्वस्थता, रोग । न+अ+क=(नाक)=सुख, आनंद, स्वास्थ्य, निरोगता । 'नाक' शब्दसे प्रयत्नके साथ स्थापित की हुई स्वास्थ्यकी अवस्था ध्वनित होती है। क्योंकि 'अक' शब्दसे अस्वास्थ्य की कल्पना ध्वनित होती है, उसका निषेध 'नाक (न-अक)' शब्दने किया है । स्वास्थ्यकी रक्षा प्रयत्नके साथ करना चाहिए । और उसके लिये उत्तम परोसनेवाला चाहिए । भोजनके समय परोसनेवाला उत्तम न हो तो स्वास्थ्य बिघडता है ।

यह मंत्र दोवार आया है, इसलिये इससे ध्वनित होता है कि पकाने और परोसनेवालोंके साथ स्वास्थ्यका विशेष संबंध है, इस बातकी ओर सबको अधिक ध्यान देना चाहिए । अच्छे नौकरके कारण घर हि स्वर्ग बन सकता है, विशेषतः अन्न पकानेवाला तथा परोसनेवाला उत्तम हो, तो घर हि साक्षात् 'वर्षिष्ठ नाक' अर्थात् 'श्रेष्ठ स्वर्ग' बन सकता है । जिनके मकानोंमें पकाने परोसनेवाले नौकर दुःख देनेवाले होते है, उनको इस मंत्रकी सचाई अनुभवसिद्ध प्रतीत हो सकती है । क्योंकि दुष्ट नौकरोंके कारण उनका मकान नरकरूप उनके लिये बनता है ।

वादित्र-विभाग ।

(A band, an orchestra.)

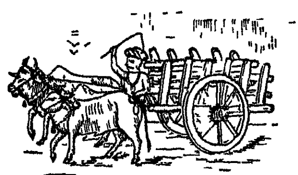
"(२०) शब्दाय आडंबराघातम् । [१४७]
(२१) स्वनेभ्यः पर्णकम् । [११९]
(२२) क्रोशाय तूणवध्मम् । [१४९]
(२३) अवरस्पराय शंखध्मम् ।" [१५०]

(शब्दाय) आवाजके लिये (आडंबर-आघातं) नौबत बजाने

वालेको प्राप्त करो । नौबत, ढोल, डफ आदि चर्मवाद्य बजानेवालोंको प्राप्त करनेसे बाजा बजानेका काम हो सकता है। (स्वनेभ्यः) स्वरोंके लिये (पर्ण-कं) तुरही बजानेवालेको प्राप्त करो ।

(क्रोशाय) बडे शब्दके लिये ढोल बजानेवालेको रखो । (अवरस्पराय) मध्यम शब्दके लिये शख बजानेवालेको रखो ।

बाजेमें जैसे नौबत बजानेवाले चाहिए, वैसेहि तुरही, सींग, शंख, बांसुरी, मुरली, घड्याल, शीटी आदि बजानेवाले भी चाहिए । इस प्रकारके बाजे मंगल कार्योंमें बजाये जाते हैं, तथा युद्ध आदिके समयमें भी बजाये जाते हैं। दोनों समयके बाजोमें भिन्न भिन्न वाद्य हुआ करते हैं । वेदमें मंगलवाद्य और रणवाद्य ऐसे दोनों प्रकारके बाजोंका वर्णन है ।



(५) चारों वर्णोंके लिये सामान्य उपदेश ।

(General instructions.)

"(१) भूत्यै जागरणम् । [१२८]

(२) अभूत्यै स्वप्नम् ।" [१२९]

(भूत्यै) उन्नतिके लिये (जागरणं) दक्षताका अवलंबन करो । (For prosperity have wakefulness) (अ-भूत्यै) अवनतिके लिये (स्वप्नं) सुस्ती है । (Idleness or indolence is for degradation)

'भूति' का अर्थ—Existence अस्तित्व; production उत्पत्ति; productive work उत्पादक कर्म; prosperity उन्नति; success विजय; wealth धन; dignity, majesty, grandeur महत्त्व प्रताप, महानता ।

'जागरण' का अर्थ—Wake-ful-ness, watch-ful-ness, खबरदारी, जागृति, चौकसी, पहारा, रखवाली, सावधानता, ध्यान, दक्षता।

'स्वप्न' का अर्थ—Sloth, indolence, sleepi-ness, सुस्ती, आलस, आराम-तलबी, बेखबरी, बेपरवाही, बेकारी, निरुद्योगिता ।

प्रत्येक कार्यमें दक्षता रखनेसे उन्नति होती है, तथा सुस्ती करनेसे अवनति होती है ।

"(३) वृद्ध्यै अपगल्भम् ।" [१३१]

(वृद्ध्यै) अभ्युदयके लिये (अप-गल्भं) गर्वहीनताका अवलंबन करो ।

'गल्भ' का अर्थ—Proud, haughty घमंडी, गर्विष्ठ, दुरभिनी, अभिमान, गर्व, घमंड ।

'अप-गल्भ' का अर्थ—निरभिमानता, गर्वहीनता, घमंड न करनेवाला मनुष्य ।

'वृद्धि' का अर्थ—Growth बढना; development खुलझाव, फैलाव; increase in wealth, prosperity, affluence धनकी परिपूर्णता, उन्नति, धनधान्यसंपन्नता; success, advancement, rise, progress, विजय, प्रगति, अभ्युदय, बढती, तरक्की; extension of power शक्तिका विस्तार ।

घमंड करनेसे प्रमाद अर्थात् दोष उत्पन्न होते हैं, इसलिये घमंड छोडना अभ्युदयके लिये अच्छा है ।

"(४) स्वप्नाय अन्धम् ।" [५४]

"(५) अधर्माय बधिरम् ।" [५५]

(स्वप्नाय) सुस्ती के लिये (अन्धं) संयमका अवलंबन करो। (अ-धर्माय) दुराचारके लिये (बधिरं) बहरा बनो । For idleness have controll over organs, and for unrighteous-ness become deaf)

निम्न श्लोकमें 'अंध' शब्दका अर्थ दिया है—तिष्ठतो व्रजतो वापि यस्य चक्षुर्न दूरगम् ॥ चतुष्पदां भुवं मुक्त्वा परिव्राडन्ध उच्यते ॥' (आपटेकृत संस्कृतकोश पृ. ९६) A kind of ascetic (परिव्राजक) who has completely controlled his organs. जिसने अपने सब इंद्रिय स्वाधीन रखे है उसको अन्ध कहते हैं । अपने इंद्रिय स्वाधीन रखनेसे सुस्ती नहीं आती ।

अधर्मकीं बातें जहां चलतीं हों, वहां बहिरा बनकर रहो, अर्थात् उन बातोंको न सुनो । सब इंद्रियोंके पापके विषयमें यही बात है, जिसका उपदेश अगले मंत्रमें हैः—

"(६) पाप्मने क्लीबम् । " [७]

(पाप्मने) पतित विचारके लिये (क्लीबं) शक्तिहीन बनो ।

'पाप्मन्' का अर्थ—Sin, crime, wickedness, guilt, evil thought, पाप, गुन्हा, कुटिलता, अपराध, बुरा विचार। जिससे अवनति होती है, उस प्रकारका विचार, उच्चार और आचार। पाप्मन्, पाप-मन्, पाप-मनन, पापी-विचार।

'क्लीब' उसको कहते हैं कि, जो अपने इंद्रियसे, कमजोरीके कारण पाप नहीं कर सकता; नपुंसक Im-potent, शक्तिहीन power-less.

पतित विचार, पतित उच्चार और पतित आचारके लिये असमर्थ बनो, अर्थात् जिससे अवनति होनी है, उस कर्मके लिये असमर्थ बन जाओ; उस कर्म करनेकी शक्ति तुम्हारे अंदर होने पर भी तुम उस बुरे कर्मको न करो। बुरा विचार करनेकेलिये मनको असमर्थ बनाओ, बुरा उच्चार करनेकेलिये वाणीको असमर्थ बनाओ, तथा बुरा कर्म करनेकेलिये अन्य अवयवोंको असमर्थ बनाओ। आंख देख सकता है, परंतु ऐसा अभ्यास करना, कि बुरी दृष्टिसे आंख किसीकी ओर न देख सके, अच्छी दृष्टिसेहि सबकी ओर देखे। इसी प्रकार सब इंद्रियोंकी परिपूर्ण शक्ति रखते हुए भी, पाप करनेकेलिये शक्तिहीन जैसा बनना चाहिए।

जहां जिस इंद्रियसे पाप होनेकी संभावना हो, वहां उस इंद्रियकी शक्तिसे रहित मनुष्यको नियुक्त करो, ताकि अन्य कार्य करता हुआ वह उस इंद्रियसे पाप न कर सके।

"(७) प्रियाय प्रियवादिनम्।" [८७]

(प्रियाय) प्रेमकेलिये (प्रिय-वादिनम्) प्रिय वक्ताको रखो।

"(८) प्रमुदे वा-मनम्।" [५२]

(प्र-मुदे) अत्यंत हर्षके लिये (वा-मनं) उत्तम मनन करनेवालेको रखो। 'वननीयं मनः यस्य। वननीयं मनुते।' जिसका मन उत्तम है अथवा जो उत्तम विचार करता है, वह 'वा-मन' कहलाता है। (वननीयं Honourable, मनः mind)

"(९) आनंदाय स्त्रीषखम् ।" [१७]

(आनंदाय) आनंदके लिये (स्त्री-सखं, स्त्री-सख्यं) स्त्रीके साथ मित्रता करो । यहां 'आनद' शब्दसे गृहसुख, कुटुंबसुख, आदि भाव लेना है । 'स-ख', स-ख्य, सह-ख्यान, समान विचार । अपनी स्त्रीके साथ समान विचार अर्थात् एक विचार रखना आनंद देनेवाला है । विवाहका बीज इस मन्त्रमें है ।

"(१०) पश्चादोषाय ग्लाविनम् ।" [१२६]

(पश्चा-दोषाय) पीछे रहनेके दोषकेलिये (ग्लाविनं) अत्यंत परिश्रम करनेवालेको रखो । 'पश्चा-दोष' उसको कहते हैं, कि जो सबसे पीछे रहनेकी आदत होती है । प्रत्येक काममें सबसे पीछे रहना, यह बडा-भारी दोष है । इसको हटानेके लिये अत्यंत परिश्रमी पुरुषके पास रहना चाहिए । 'ग्लाविन्' उसको कहते हैं, कि जो अत्यंत महान परिश्रमके साथ दीर्घ उद्योग कर करके थक जाता हो । सदा उद्योग करता रहता है, और अत्यंत पुरुषार्थ करनेके कारण थक जाता है । ऐसे दीर्घोद्योगी पुरुषके साथ रहनेसे पीछे रहनेका दोष दूर होगा, और शीघ्र पुरुषार्थ करनेका अभ्यास हो जायगा ।

"(११) विश्वेभ्यो देवेभ्यः सिध्मलम् ।" [१२७]

(विश्वेभ्यः देवेभ्यः) सब विद्वानोंकेलिये (सिध्-मलं) सिद्धता करनेवालेको रखो । 'सिद्धं मलति धारयति इति सिध्मलः सिद्धि-धारकः ।' जो सिद्धताका धारण और पोषण करता है । अर्थात् जो सब शुभ अवस्थाकी सिद्धता करता है, उसको सब विद्वानोंकेलिये रखो, ताकि वह उन विद्वानोंके सब काम ठीक प्रकार सिद्ध कर सके, और उनको सुख पहुंचा सके । यहां 'देव' शब्दके पूर्वोक्त ग्यारह अर्थ देखकर इस मंत्रका अधिक विचार पाठकोंको करना चाहिए ।

"(१२) कामाय पूंश्चलूम् ।" [९]

(कामाय) इच्छाके लिये (पूं-चलूं) पुरुषोंको संचालन करनेवालेको

प्राप्त करो। इच्छाशक्तिको बलवान करनेके लिये ऐसे मनुष्यके पास जाओ, कि जो अपने प्रभावसे अनेक मनुष्योंके अंदर हलचल उत्पन्न करता है।

गायन-विभाग।

"(१३) गीताय शैलूषम् ।[१२]
(१४) नृत्ताय सूतम् ।[११]
(१५) महसे वीणा-वादम् ।[१४८]
(१६) नृत्ताय वीणा-वादम् ।[१५९]
(१७) " पाणि-घ्नम् ।[१६०]
(१८) " तूणव-ध्मम् ।[१६१]
(१९) आनंदाय तल-वम् ।" [१६२]

(१३) गायनके लिये (शैलूषं) करताल बजानेवालेको रखो। (१४) नाचके लिये (सूतं) नाचके प्रेरकको रखो। (१५) (महसे) महत्वके लिये वीणा बजानेवालेको रखो। (१६—१८) नृत्यके लिये वीणा करताल और चर्मवाद्य बजानेवालोंको रखो। (१९) आनंदके लिये ताल धरनेवालेको रखो।

गायन, वादन, नृत्य आदिमें वीणा, तंबोरा, सतार, आदि तंतुवाद्य; मृदंग, तबला, आदि चर्मवाद्य; करताल, झांझ आदि धातुवाद्य प्रयुक्त होते हैं। इनके विना गायन, वादन, नर्तनमें रस नहीं आता, इसलिये इनको साथ रखनेके लिये उक्त मंत्रोंमें कहा है।

गायनसे फेंपडे बलवान होते हैं, नृत्यसे शरीरकी चपलता रहती है; तथा गायन वादन नर्तनसे भक्तिरसका विकास होता है। सब सामवेद गायनरूप है, उपासनावेद उसको कहते हैं। गायन वादन नर्तनका ईश्वरभक्तिके साथ शिक्षण देना चाहिए, तथा उसको भक्तिका पोषकहि बनाना चाहिए।

(६) प्राजापत्य-विभाग।

अथ एतान् अष्टौ वि-रूपान् आलभते ॥

"(१) अति-दीर्घं च । [१७३]; (२) अति-ह्रस्वं च । [१७४]
(३) अति-स्थूलं च । [१७५]; (४) अति-कृशं च । [१७६]
(५) अति-शुक्लं च । [१७७]; (६) अति-कृष्णं च । [१७८]
(७) अति-कुल्वं च । [१७९]; (८) अति-लोमशं च । [१८०]

अ-शूद्राः अ-ब्राह्मणाः ते प्रजापत्याः ॥

(९) मागधः । [१८१]; (१०) पूंश्चली । [१८२]
(११) कितवः । [१८३]; (१२) क्लीबः । [१८४]

अ-शूद्राः अ-ब्राह्मणाः ते प्राजापत्याः ॥

अर्थ—अब इन आठ (वि-रूपान्) विरुद्ध रूपवाले मनुष्योंको (आ-लभते) प्राप्त करता है। (१) बहुत ऊंचा, (२) बहुत ठिंगणा, (३) बहुत स्थूल, (४) बहुत कृश, (५) बहुत गोरा, (६) बहुत काला, (७) जिसपर बिलकुल बाल नहीं ऐसा, तथा (८) जिसपर बहुत बाल हैं, ऐसा ॥ (९) 'मा-गध'=अर्थात् प्रमाणपूर्वक भाषण करनेवाला, (१०) 'पूं-चलिन्'=अर्थात् मनुष्योंमें हलचल मचानेवाला, (११) 'कित-व'=अर्थात् बडा ज्ञानी, और (१२) 'क्लीब*'=अर्थात् शक्तिहीन, पुरुषत्वहीन, असमर्थ ॥ ये बारा प्रकारके लोक 'प्रजापति' अर्थात् प्रजापालक राजाके लिये अपने पास रखने योग्य हैं, परंतु ये शूद्र न हों तथा ब्राह्मण न हों।

---

* अपनी शक्तिको गुप्त (Latent) रखनेवाला ऐसाभी इस 'क्लीब'का शब्द आशय हो सकता है। ह्रस्व 'क्लिब' शब्द शक्तिका वाचक है।

शूद्र अर्थात् कारीगर अथवा नौकर पेशाके लोक, तथा ब्राह्मण अर्थात् ज्ञानी, इन दोनोंको छोडकर; अन्य क्षत्रिय वैश्योंमेंसे उक्त बारा प्रकारके लोक प्रजापालक राजाको केवल अपने पास रखने योग्य हैं। इससे स्पष्ट होता है, कि अन्य क्षत्रिय वैश्य अधिकारी इस प्रकारके न हों। अर्थात् कोई क्षत्रिय वैश्य वर्णका मनुष्य, जो बहुत ऊंचा, बहुत ठिंगणा, बहुत मोटा, बहुत दुबला, बहुत गोरा, बहुत काला, बहुत कम बालवाला अथवा बहुत बालवाला है, उसको शासक संस्थाका अधिकारी न किया जावे। यह बात स्पष्ट है, कि इस प्रकारके कुरूप लोकोंका अन्य लोक उपहास करते हैं, इसलिये इनको अधिकारपर रखना उचित नहीं। इसलिये यह बात निश्चित होगई कि जो मनुष्य, उक्त आठ प्रकारकी कुरूपतासे रहित अर्थात् जो, सुरूप होता है, उसीको अधिकारपर रखना चाहिए।

तथा प्रमाणपूर्वक भाषण करनेवाला, हलचल करनेवाला, महाज्ञानी तथा शक्तिहीन, इन चार प्रकारके मनुष्योंको भी राजाने केवल अपने पास हि रखना चाहिए। शूद्र तथा ब्राह्मणोंको छोडकर अन्य क्षत्रिय वैश्योंमेंसे कोई व्यवसायी इन चार गुणोंसे युक्त न हो। क्योंकि बहुत प्रभावशाली वक्ता हुआ तो अपनाहि नया मत स्वतंत्रतासे चलायेगा, संचालक हुआ तो मनुष्योंमें खिलबिली मचायेगा, ज्ञानमें मस्त रहनेवाला हुआ तो काम करनेमें असमर्थ होगा तथा शक्तिहीन हुआ तो अधिकारीपनका कार्य करनेमें असमर्थ होगा। इसलिये इन चार विशेष गुणोंसे युक्त जो नहीं होते हैं, उनकोहि अधिकारपर रखना चाहिए। जिनसे राज्यशासनका बिघाड होना संभव नहीं, ऐसे पुरुष चुनने चाहिए। अच्छा वक्ता हो परंतु अपनाहि मत चलानेवाला न हो, लोकोंमें हलचल मचानेवाला न हो, ज्ञानमेंहि मस्त न हो, तथा शक्तिहीन न हो। अर्थात् शासनप्रणालीका विरोध न करता हुआ शासनका कार्य अच्छी प्रकार करनेवाला जो होगा, उसको हि शासनकेलिये अधिकारी करना उचित है।

शूद्र जैसे मिलेंगे वैसे रखने। क्योंकि वे स्वतंत्र धंदेवाले होनेके कारण, उनका शासनविभागमें कोई अधिकार नहीं है, इसलिये उनकी कुरूप-

तासे जनतापर बुरा असर होना संभव नहीं। तथा ब्राह्मण भी जैसा मिले वैसा नियुक्त किया जाय। क्योंकि उनका केवल ज्ञानप्रचारका कार्य है, और ज्ञान जहां होगा वहांसे लेना चाहिए। इसलिये उक्त आठ कुरूपताओंके कारण शूद्र और ब्राह्मणोंको दूर नहीं करना चाहिए।

उदाहरणकेलिये सैन्यविभाग लीजिए। सैन्यमें जो लोक रखने होंगे उनमेंसे कई बडे ऊंचे, कई बडे ठिंगणे, कई बडे मोटे, कई बिलकुल पतले, कई बहुत बालवाले तथा कई विना बालोंके लोक होंगे, तो उस सैन्यविभागका किस प्रकार विचित्र और बेढंगा स्वरूप हो सकता है, इसकी कल्पना पाठक कर सकते हैं। सैन्यविभागमें एक जैसे आकारवालेहि लोक रखने चाहिए, जिससे सैन्यके स्वरूपसे विशेष प्रभाव उत्पन्न हो सके। ओहदेदार भी बहुत हि बडे पेटवाला अथवा बहुत हि दुर्बल होनेसे, उसका वैसा प्रभाव नही हो सकता, कि जैसा उसका स्वरूप सुडौल होनेसे हो सकता है। यही बात सब स्थानमें जाननी चाहिए।

तर्खाण, लुहार, चम्हार आदि स्वतंत्र उद्यम करनेवाले जिस किसी प्रकारके हों; उनसे जनतापर कोई बुरा असर नहीं होता। तथा बडा विद्वान् ब्राह्मण अष्टावक्र जैसा बिलकुल तेढा मेढा होनेपरभी उसकी सर्वत्र प्रशंसा हो सकती है; क्योंकि वहां विद्याका तेज अप्रतिम होता है। इस लिये इन दोनोंको छोड दिया है, और कहा है कि "अ-शूद्राः अ-ब्राह्मणाः।" शूद्र और ब्राह्मणोंको छोडकर पूर्वोक्त अन्य अधिकारियांमें इस प्रकारकी अष्टविध कुरूपता न हो।

प्रजापति अथवा प्रजापालक राष्ट्राधिकारी इन अष्टविध विरूपोंको अपने पास विशेष कामके लिये रखे, परंतु 'क्षत्राय राजन्यं' आदि मंत्रोंसे जिन अधिकारियोंका वर्णन हुआ है, उनके स्थानपर इस प्रकारके कुरूप न रखे जांय। इसी लिये इन आठ कुरूपोंको अलग गिनकर प्रजापालकके साथ इनको नियुक्त करनेकेलिये कहा है। इसका तात्पर्य किसी अन्य अधिकारके स्थान पर ये आठ कुरूप नियुक्त न हों, ऐसा स्पष्ट है। यह विचार अष्टविध कुरूपताओंका हुआ। अब चतुर्विध दोषोंका विचार करेंगेः—

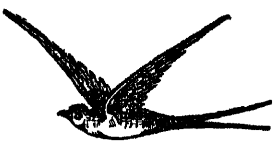
चतुर्विध दोष ।

[वैदिक संकेत]	[गुणाधिक्यसे दोष]	[दुराचारसे दोष]
(१) मागधः	(मा-गधः)-अत्यंत प्रभावशाली, तथा प्रमाणपूर्वक विलक्षण वक्तृत्व करनेवाला ।	(मागध) स्तुति-पाठक, खुशामत कर-नेवाला
(२) पूंश्चलिन्	(पूं-चलिन्)-लोकों मे हलचल मचानेवाला	(पूंश्चलिन्) व्यभिचारी । दोनो प्रकारका व्यभिचार करनेवाला ।
(३) कितवः	(कित-व.)-ज्ञानमें हि तल्लीन होनेवाला ।	(कितवः) जुआ खेलनेवाला । (A gambler), बद-माश (rogue)
(४) क्लीबः	अत्यंत नम्रता धा-रण करनेवाला (un-assuming) अपनी शक्तिका उपयोग न करनेवाला ।	नपूंसक, शक्ति-हीन, पौरुषत्व-हीन ।

ये चार शब्द दो दो अर्थ बताते हैं । गुणके अधिक होनेके कारण पहिला दोष है । वास्तवमें यह गुणकी अधिकता प्रत्येक व्यक्तिमें सन्मान बढानेवाली है । परंतु इस प्रकारके गुणाधिक्यवाले लोक, ओहदेपर रह

कर, राज्ययंत्रका जिम्मेवारीका काम अच्छी प्रकार नहीं निभा सकते। व्यक्तिशः ये गुण हैं, इसलिये राष्ट्रशासकको ऐसे मनुष्य अपनेपास रखने चाहिए। परंतु शासनके कार्यमें इनके गुणाधिक्यके कारण बिघाड होनेकी संभावना है, इसलिये इनको उस काममें नही नियुक्त करना।

यही चार वैदिक संकेत चार दुष्ट दोषोंके दर्शक हैं। खुशामदी, व्यभिचारी, जुवारिया, और शक्तिहीन। इन चार प्रकारके दुष्ट मनुष्योंको भी शासनकार्यमें लगाना नही चाहिए। धर्म और नीति (Morality) का बिघाड इनसे होता है। बलवान न होना अथवा दुर्बल, शक्तिहीन, पौरुषत्वहीन रहना हि वेदकी संमतिसे दोष है। प्रयत्न करके प्रत्येकको निर्दोष, बलिक और पुरुषार्थी होना चाहिए। इन चार दोषोंके विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं।



(७) मृत्युका दंड ।

"(१) मृत्यवे मृगयुम् । [२९]

(२) मृत्यवे गोव्यच्छम् ॥ [१३८]

(३) " गोघातम् । [१३९]

(४) अंतकाय स्वनिनम् । [३०]

(५) क्षुधे यो गां विकृन्तंतं भिक्षमाण उपतिष्ठति तम् । [१४०]

(६) संशराय प्रच्छिदम् । [१३२]

(मृग-युं) हरनकी शिकार करनेवालेको, (गो-व्यच्छं) गायको छेडनेवालेको, (गो-घातं) गायका वध करनेवालेको, (स्वनिनं) बुरे शब्दोंसे गर्जना (Abusive) करनेवाले को मृत्युकेलिये रखो । जो गायकी शकल बिघाडता है और भीक मांगता है उसको (क्षुधे) भूखा रखो । (संशराय) छेदनके लिये (प्रच्छिदं) उत्तम छेदनकर्ताको रखो । अर्थात् वधदण्ड देनेके लिये शिरश्छेद करना हो, तो ऐसे मनुष्यको रखो, कि जो उस कामको उत्तमतासे कर सके ।

'गां मा हिंसीः ।' यजु. १३।४३ । गायकी हिंसा न कर। यह वेदकी आज्ञा है । इसका उल्लंघन करनेवाला दण्डकेलिये पात्र होता है । गायका वध करना, गायको सताना, गायकी शकल बिघाडकर भीक मांगना आदि सब अपराध वधके योग्य हैं । हरनकीभी शिकार नहीं करना ।

इन मंत्रोंमें 'स्वनिन' शब्दके विषयमें पाठकोंको बहुत सोचना चाहिए । तैत्तिरीय ब्राह्मणमें 'गाली देने'के अर्थमें यह शब्द आया है । किसी अन्य स्थानपर इसका कोई अन्य अर्थ हो, तो उसकी खोज करनी चाहिए । तबतक इसके अर्थके विषयमें संदेहहि रहेगा । अस्तु ।

इस प्रकार यह 'वसुविभाग' प्रकरण है। इस प्रकरणमें जो अर्थ दिये हैं, उनपर अधिक संशोधनकी आवश्यकता है। आशा है कि विद्वान् स्वाध्यायशील पाठक इन मंत्रोंके अर्थोंपर विशेष विचार करके सच्चे अर्थकी खोज करेंगे।

(१) व्यक्तिमें शांति। (२) जनतामें शांति॥ (३) जगतमें शांति॥।

यजु० अध्याय ३० के मंत्रोंके अन्य ग्रंथोंमें स्थान ।

मंत्र १—देव सवितः प्रसुव यज्ञं० ।—यजु० वा० सं० ९।१॥; ११।७॥; ३०।१॥ काण्व० सं० १०।१।१॥. तै० सं. १।७।७।१॥; ४।१।१।२॥. मै० सं० १।११।१॥ १६१।७॥; १।११।६॥ १६७।१७॥. काठ० सं० १३।१४॥; १४।६॥; १५।११॥. शत० ब्रा० ५।१।१।१४॥ १६॥; ६।३।१।१९॥. मान० श्रौ० ७।१।१॥. साम० मं० ब्रा० १।१।१॥. प्रतीक—देवसवितः प्रसुव यज्ञं । मा० श्रौ० ६।१।१॥. देवसवितः प्रसुव । आप० श्रौ० १८।२।१०॥. गोभि० गृ० १।३।४॥. खा० गृ० १।२।२०॥. हि० गृ० १।२।१०॥ आप० गृ० १।२।३॥. देव सवितः । मै० सं० २।७।१॥ ७४।७॥ शत० ब्रा० १३।६।२।९॥; कात्या० श्रौ० १४।१।११॥; २१।१।६॥ आप० श्रौ० २०।२४।६॥.

मंत्र २—तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो० ।—[य. अ० ३६ 'सची शांतिका सचा उपाय' नामक पुस्तकमें इसके स्थान देखीए। वहां विस्तारपूर्वक दिये हैं ।]

मंत्र ३—विश्वानि देव सवितर्०—ऋ० ५।८२।५॥. यजु० वा० सं० ३०।३॥. शत० ब्रा० १३।४।२।१०॥ ६।२।९॥. तै० ब्रा० २।४।६।३॥. तै० आ० १०।१०।२॥ ४९।१॥. महा० ना० उ० ९।७॥; १७।७॥. शांखा० श्रौ० १६।१।२१॥. आप० श्रौ० ६।२३।१॥; २०।२४।६॥.

मंत्र ४—विभक्तारं हवामहे वसोः० ।—ऋ० १।२२।७॥. यजु० वा० सं० ३०।४॥. शत० ब्रा० १०।२।६।६॥.

मंत्र ५—क्षत्राय ब्रह्मणे ब्राह्मणम् ।—यजु० वा० सं. ३०।५॥. तै० ब्रा० ३।४।१।१॥. कात्या० श्रौ० २१।१।७॥ आप० श्रौ० २०।२४।८॥.

राजन्यम् ।—यजु० वा० सं० ३०।५॥. तै० ब्रा० ३।४।१।१॥

[इस मंत्रसे अ० ३० के समाप्तितकके सब मंत्र केवल तै० ब्रा० ३।४।१।१ से ३।४।१।१९ तक आये हैं, किसी अन्य ग्रंथमें केवल अंशरूप प्रतीकोंके सिवाय नहीं हैं।]

वैदिक सुभाषित।

भूमिका।

१ तदेव मन्येहं ज्येष्ठम्।	उसी एक (ईश्वर) को मैं सबसे श्रेष्ठ मानता हूं।
२ तदु नात्येति कश्चन। ...	उस (ईश्वर) का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता।
३ तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।...	उस श्रेष्ठ ब्रह्मको नमस्कार।
४ आप्यायध्वम्।	उन्नतिको प्राप्त कीजिए।
५ इषे त्वोर्जे त्वा।	तुमको अन्न और बल प्राप्त करना चाहिए।
६ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे।......	आप सबको प्रेरक-देव श्रेष्ठ कर्मके लिये प्रेरणा करे।
७ गां मा हिंसीरदितिं विराजम्।..................	गाय तेजस्वी और हिंसा करने अयोग्य है, इसलिये उसकी हिंसा मत करो।
८ मा हिंसीस्तन्वा प्रजाः।	अपने शरीरसे किसी प्राणीको कष्ट न दे।
९ आरे गोहा नृहा।	गाय और मनुष्यका वध करनेवालेको दूर करो।
१० व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिलम्।	चावल, जौ, माह और तिल खाईए।
११ एष वां भागो निहितः।	यह ही भोजन (शाकाहार) आप सबके लिये निश्चित किया है।

यजु० अ० ३०

१२ प्रसुव यज्ञम् ।...............	सत्कर्म करो ।
१३ प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।	सत्कर्म कर्ताको उन्नतिके लिये प्रेरित करो ।
१४ केत-पूः केतं नः पुनातु ।	ज्ञानसे पवित्र बना हुआ ज्ञानी हम सबके ज्ञानको पवित्र करे ।
१५ वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ।	उत्तम वक्ता हम सबके वाणीको मधुर बनावे ।
१६ भर्गो देवस्य धीमहि । ...	हम सब एक ईश्वरके श्रेष्ठ तेजका ध्यान करें ।
१७ धियो यो नः प्रचोदयात् ।	जो ईश्वर हम सबके बुद्धियोंको उत्तम प्रेरणा करता है ।
१८ दुरितानि परा सुव ।	पापोंको दूर फेंको ।
१९ यद्भद्रं तन्न आ सुव । ...	जो भला है उसको हम सबके पास करो ।
२० विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः ।	विलक्षण सिद्धिके साधनरूप धनका सबकेलिये योग्य विभाग करनेवालेकी हम सब प्रशंसा करते हैं ।

स्पष्टीकरण ।

२१ स्वर्यंतो धिया दिवम् ।	बुद्धिसे सत्वरूप तेजस्वी स्वर्गको प्राप्त होते हैं ।
२२ बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ।...	जो बडे तेजको फैलाते हैं उनको ईश्वर विशेष ऐश्वर्ययुक्त करता है ।
२३ प्रेरय सूरो अर्थं न पारम् ।	विद्वान जिस प्रकार पार होता है, उस प्रकार अपने उच्च ध्येयके लिये प्रेरित हो जाओ ।
२४ उग्राय तवसे सुवृक्तिं प्रेरय ।	श्रेष्ठ बलकेलिये उत्तम भाषण और उत्तम कर्म करो ।

२५ यज्ञ इन्द्रमवर्धयत्।......	सत्कर्मसे श्रेष्ठकी वृद्धि होती है।
२६ स्वर्यन्तो नापेक्षन्ते। ...	तेजस्वितासे व्यवहार करनेवाले अन्यकी अपेक्षा नहीं करते।
२७ यज्ञं ये विश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे।	जो विश्वके आधाररूपी सत्कर्मको फैलाते हैं वे हि उत्तम विद्वान हैं।
२८ यज्ञं तपः।..................	सत्कर्म हि तप है।
२९ बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे।	उनके सब बल आजहि मेरे शरीरमें स्थिर होवे।
३० देवेन मनसा सह।.........	दिव्य मनके साथ रहो।
३१ सं श्रुतेन गमेमहि।.........	हम सब ज्ञानके साथ इकट्ठे रहें।
३२ मा श्रुतेन वि राधिषि।...	ज्ञानके साथ कभी विरोध न करो।
३३ मय्येवाऽस्तु मयि श्रुतम्।	मेरे अंदर निश्चयसे ज्ञान स्थिर रहे
३४ वाचस्पते ! सौमनसं मनश्च गोष्ठे नो गा जनय।	हे वाक्पते ! उत्तम मननशक्तिके साथ मन और उत्तम इंद्रिय हम सबके इद्रियके स्थानमें स्थिर करो।
३५ जिह्वया अग्रे मधु।	जिह्वा (जबान) के अग्रभागमें मधुरता रहे।
३६ जिह्वा-मूले मधूलकम्।...	जिह्वाके मूलमें मीठास रहे।
३७ मधुमन्मे निष्क्रमणं मधुमन्मे परायणं	मेरा चालचलन और मेरा बर्ताव मीठा रहे।
३८ वाचा वदामि मधुमद्।..	मै मीठा भाषण बोलूंगा।
३९ भूयासं मधुसंदृशः। ...	मैं मधुरताकी मूर्ति बनूंगा।
४० तुरं भगस्य धीमहि।...	भाग्यके विजयका ध्यान करते हैं।
४१ अस्य हि स्वयशस्तरं सवितुः कच्चन प्रियम्। न मिनन्ति स्वराज्यम्॥	इस उत्साहवर्धकके अपने यशसे फैलेहुए प्रेममय स्वराज्यका कोई भी नाश नहीं कर सकते।

मनु. उन्न. १३

४२ भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम् ।...............	तेज, यश, सहनशक्ति, शारीरिक शक्ति, दीर्घ आयु, तथा आत्मिक बल प्राप्त करने चाहिए ।
४३ राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय ।	राष्ट्रसेवा और सौ वर्षकी आयुके लिये मै इसका स्वीकार करता हू ।
४४ परोपेहि मनस्पाप ।	हे मनके पाप विचारो ! दूर हो जाओ ।
४५ परेहि न त्वा कामये ।	हे पाप ! दूर हो जाओ, मै तेरी इच्छा नहीं करता ।

४६ अप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे ।...दुराचार और दुर्विचार दूर रखो ।

४७ प्रचेता दुरितात्पात्वंहसः।...ज्ञानी दुर्गति और पापसे बचावे ।

४८ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम ।...कानोंसे अच्छे विचार सुनें ।

४९ भद्रं पश्येमाक्षभिः । ....आखोंसे अच्छा रूप देखे ।

५० स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसः ।	बलवान अवयवोंद्वारा ईश्वरकी उपासना करेंगे ।
५१ तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ।	अपनी आयुकी समाप्तितक अपने शरीरसे विद्वानोंका हित करेंगे ।

५२ रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु ।...हमारे ज्ञानियोंमें तेजस्विता रखो ।

५३ रुचं राजसु नस्कृधि । हमारे शूरोंमें तेजस्विता रखो ।

५४ रुचं विश्येषु शूद्रेषु ।...वैश्य और शूद्रोंमें तेजस्विता रखो ।

५५ ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् ।...	ब्राह्मण ज्ञानसे तेजस्वी होवे ।
५६ आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्यो अतिव्याधी महारथो जायताम् ।	हमारे राष्ट्रमें शूर लोक उत्तम प्रभावशाली वीर बने ।

५७ योगक्षेमो नः कल्पताम्।	हम सबको ऐहिक अभ्युदय और आत्मिक शांति प्राप्त होवे।
५८ इह स्फातिं समावहन्।	यहां उन्नतिको प्राप्त करें।
५९ असंबाधं मध्यतो मानवानाम्।	मनुष्योंमें लढाई झगडा न होवे।
६० पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः।	हमारी मातृभूमी हम सबका यश विस्तृत करे।
६१ परा तत्सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते।	जहां ज्ञानियोंको कष्ट पहुंचते हैं। वह राष्ट्र अधोगतिको प्राप्त होता है।
६२ देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम्।	सब ज्ञानी ईश्वरके साथ रहते है।
६३ ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।	ब्रह्मचर्य और तपद्वारा राजा राष्ट्रका विशेष प्रकारसे रक्षण करता है।
६४ असमं क्षत्रं असमा मनीषा।	अतुल शौर्य और असीम बुद्धि धारण करो।
६५ वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः।	हम सब अपने राष्ट्रमें अग्रभागमें होकर जागते रहें।
६६ राष्ट्रभृतो ह्यक्षाः।	राष्ट्रसेवकहि राष्ट्रके आंख है।
६७ वयं स्याम पतयो रयीणाम्।	हम सब धनोंके अधिपति बनें।

[इन मंत्रोंके अतिरिक्त मंत्र ५ से २२ तक के मंत्रोंमें जो १८४ मंत्र भाग आये है, वे सबके सब ध्यानमें धरने योग्य हैं। पाठक उनको स्पष्टीकरणमें देखें और स्मरण करें।]

मंत्र-सूची ।

सूचना—जिनके सामने * ऐसा चिन्ह है वे वाक्य वेदमन्त्र नही है । वे अन्य ग्रथोंके वाक्य हैं ।

विषयसूची ।

भूमिका ।